ISSN-2250-2335

# समीचीन

(साहित्य-समाज-संस्कृति और राजनीति के खुले मंच की अर्द्ध वार्षिक-अव्यावसायिक पत्रिका)

## कमलेश बख्शी की रचनाओं पर केन्द्रित

23

वर्ष - 12 ■ अंक - 23 ■ जुलाई-दिसंबर - 2019 ■ मूल्य ५० रुपए ■पूर्णांक 61
संपादक - देवेश ठाकुर

# देवेश ठाकुर रचनावली

(16 खंडों में)

(द्वितीय संस्करण)

मूल्य : 16,500/-

नमन प्रकाशन
4231/1, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002

# समीचीन

(साहित्य-समाज-संस्कृति और राजनीति के खुले मंच की अर्द्ध वार्षिक-अव्यावसायिक पत्रिका)

**प्रबंध संपादिका :**

डॉ. रोहिणी शिवबालन

**संपादक-प्रकाशक :**

डॉ. देवेश ठाकुर

**संयुक्त संपादक :**

डॉ. सतीश पांडेय

**उप संपादक :**

डॉ. प्रवीण चंद्र बिष्ट

**संपादकीय-संपर्क :**

बी-23, हिमालय सोसाइटी, असल्फा,
घाटकोपर (पश्चिम), मुंबई-400 084
टेलिफोन : 25161446
Email : sameecheen@gmail.com

**विशेष :**

'समीचीन' में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार संबद्ध रचनाकारों के हैं। संपादक-प्रकाशक की उनसे सहमति आवश्यक नहीं है। सभी विवादों का न्याय-क्षेत्र मात्र मुंबई होगा। सभी पदाधिकारी पूर्णरूप से अवैतनिक।

**विद्वत परीक्षक मंडल :** (Peer Review Team)

१. डॉ. शरेशचंद्र चुलकीमठ
पूर्व अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
कर्नाटक विश्वविद्यालय, धारवाड़

२. डॉ. अरुणा दुबलिश
पूर्व प्राचार्य, कनोहरलाल महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मेरठ (उ. प्र.)

३. डॉ. पुष्पारानी
अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, हरियाणा

४. डॉ. नरेंद्र मिश्र
हिंदी विभाग,
जयनारायण व्यास, विश्वविद्यालय, जोधपुर

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक : देवेश ठाकुर ने प्रिंटोग्राफी सिस्टम (इंडिया) प्रा. लि., 13/डी, कुर्ला इंडस्ट्रियल एस्टेट, नारी सेवा सदन रोड, नारायण नगर, घाटकोपर (प.), मुंबई-400086 में छपवाकर बी-23, हिमालय सोसाइटी, असल्फा, घाटकोपर (प.), मुंबई-400084 से प्रकाशित किया।

संपादक : **देवेश ठाकुर**

वर्ष-12, मूल्य - 50 रुपए अंक-23, पूर्णांक-62

**सहयोग :** एक प्रति रु. 50 /-, **वार्षिक** रु.100/-, **पंच वार्षिक** रु.500/-, **आजीवन सदस्यता** रु. 5000/-

## इस अंक में


| | पृष्ठ |
|---|---|
| अपने तई | 5 |
| व्यक्ति-परिचय : कमलेश बख्शी | 7 |
| मेरी रचना प्रक्रिया : कमलेश बख्शी | 9 |
| दिशाहीन जिंदगियों को दिखाता उपन्यास : डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय | 14 |
| कच्चे पक्के रास्ते : मंजिल के रास्तों का संघर्ष : डॉ. माधुरी छेड़ा | 17 |
| अतीत से गुजरते : एक त्रासद कथा : डा. सुमनिका सेठी | 21 |
| युवा पीढ़ी के भटकाव को अभिव्यक्त करता उपन्यास : 'जिनी यहीं रहेगी' : प्रवीण चंन्द्र बिष्ट | 27 |
| सुरंग के बाहर : पुरुष वर्चस्ववाद का प्रतिकार : राजेश गौड़ | 37 |
| 'अंतहीन भटकन' ही है जीवन : डॉ. अनिल कुमार सिंह | 41 |
| साहस और भक्ति का प्रतिनिधित्व करता उपन्यास : विधिचंद : शोभा बिष्ट | 45 |
| नारी जीवन की पीड़ा, संघर्ष और विद्रोह का बहुविध संसार रचती कहानियाँ : डॉ. सतीश पांडेय | 49 |
| व्यक्तिगत एवं सामाजिक समस्याओं को उकेरती पंजाबी कहानियाँ : डॉ. मनप्रीत कौर | 56 |
| महानगरीय जीवन के संघर्ष से उपजी कहानियाँ : प्रो. कला जोशी | 65 |
| समस्याओं और संघर्षों पर दृष्टि : कमलेश बख्शी : डॉ. रीता दास राम | 77 |
| स्त्री के सामाजिक यथार्थ से परिचय कराती : मर्यादा : डॉ. अर्चना दुबे | 84 |
| अमेरिकी जीवन का यथार्थ : 'सावधान! ब्रिज आइस्ड है' : डॉ. चित्रा मिलिंद गोस्वामी | 90 |
| कमलेश बख्शी कृत 'नील गगन तले' यात्रा वृतांत का समीक्षात्मक अध्ययन : डॉ. सत्यवती चौबे | 95 |
| विदेशों में भारतीय संस्कृति की वाहिका यादों में बसा विदेश :डॉ. पुष्पा रानी | 100 |
| संघर्ष और युगीन चुनौतियाँ- देश-समाज और संस्कृति : प्रा. संजय प्रल्हाद महाजन | 104 |
| संवेदनशील, सौम्य एवं सरलता की मूर्ति : कथा लेखिका कमलेश बख्शी से बातचीत : डॉ. मंजुला देसाई | 108 |

# *अपने तईं*

'समीचीन' के नए स्वरूप में अभी तक हमने अपने सुधी पाठकों को मंगलेश डबराल, डॉ. सूर्यबाला, डॉ. श्रवण कुमार गोस्वामी पर विशेष सामग्री दी है। इसी क्रम में इस बार विशिष्ट कथाकार कमलेश बख्शी को यह अंक समर्पित है। कमलेश बख्शी की रचनाओं में सामाजिक सरोकार बड़ी संवेदनशीलता के साथ व्यक्त हुए हैं। उनकी व्यक्तित्व की विशेषता उनकी सादगी है। यही सादगी उनकी रचनाओं में भी अभिव्यक्त हुई है। सामान्यतः यह माना जाता है कि कथा लेखिकाओं की रचनाएं अधिकतर घर परिवार तक सीमित रहती हैं। ठीक है कि कमलेश जी की कतिपय रचनाओं में पारिवारिक जीवन के खट्टे-मीठे अनुभव को बड़ी सहज भाषा और परिवेश में अभिव्यक्ति मिली है। लेकिन इसके साथ-साथ उन्होंने अपने अधिकांश लेखन में सामाजिक मुद्दों को उठाया है। व्यक्तिपरकता से दूर उनकी रचनाओं में एक विशिष्ट सामाजिक बोध है। यह बोध पाठक को प्रेरित तो करता ही है, उद्वेलित भी करता है। यह लेखिका की विशिष्ट उपलब्धि है।

कमलेश जी की रचनाएं कई देशी-विदेशी भाषाओं में भी अनूदित हुई हैं। वे स्वयं भी कई बार विदेश गई हैं। इससे उनकी लेखकीय दृष्टि में विशेष प्रकार का विस्तार हुआ है। उनकी विशिष्टता इस बात को लेकर विशेष है कि उन्होंने सहज भाषा में घर-परिवार, स्त्री-पुरुष और समाज में व्याप्त विघटन को अभिव्यक्ति दी है। इससे कथा-लेखिका की व्यापक दृष्टि के साथ-साथ उनकी वैयक्तिक और सामाजिक प्रतिबद्धता भी सिद्ध होती है। एक प्रकार से हम कमलेश जी के व्यक्तित्व में जिस सहजता और संवेदना को लक्षित करते हैं, वही सहजता और संवेदना उनके लेखन के मूल में भी है। इनके लेखन में हम पात्रों के साधारण से विशेष हो जाने तक की यात्रा का भी अवलोकन करते हैं। इनके पात्र सभी प्रकार का दंश सहते और उससे पार पाने का प्रयास करते हैं। यह प्रयास ही इनके लेखन की प्रतिबद्धता का प्रमाण है।

इस अंक के सुधी लेखकों ने उनके भिन्न-भिन्न कृतियों पर जिस परिश्रम और निष्ठा के साथ, उनका विवेचन और विश्लेषण किया है, उससे लेखिका की प्रतिबद्धता प्रामाणिक हो जाती है। इस सबके लिए हम उनके आभारी हैं। हमें विश्वास है कि इस अंक में संकलित लेखों से कृति के कथ्य के साथ-साथ लेखिका का व्यक्तित्व सुधी पाठकों के समक्ष पूरे प्रभाव के साथ स्पष्ट हो सकेगा। अस्तु।

**एक बात और :**

**अपनी उम्र के इस बिंदु पर आकर और स्वास्थ्य का साथ न देने के कारण अब अगले अंक से पत्रिका के संपादक का भार मेरे प्रिय शिष्य और मित्र डॉ. सतीश पांडेय करेंगे और संयुक्त संपादक के रूप में मेरे अन्य मित्र डॉ प्रवीण चंद्र बिष्ट उन्हें सहयोग देंगे।**

**मुझे विश्वास है कि इन दोनों मित्रों के संपादकत्त्व में यह पत्रिका सफलता और विशिष्टता के अगले आयामों की ओर अग्रसर होगी।** धन्यवाद.....।

– देवेश ठाकुर

# व्यक्ति-परिचय

**कमलेश बख्शी**

कमलेश बख्शी का जन्म ८ फरवरी, १९३४ को पंजाब के बहनीवाल गाँव, जिला फिरोजपुर में हुआ था। जन्म के २० दिन बाद ही इन्हें अपना गाँव छोड़ना पड़ा था। इनके पिता का नाम स. अजय बदन सिंह गिल तथा माता का नाम गुरबचन कौर गिल था। मातृभाषा होने के बावजूद इन्होंने हिंदी में लेखन कार्य किया। इन्हें पंजाबी और हिंदी के अलावा मराठी, गुजराती और अंग्रेजी भाषा की भी जानकारी है। इनका बाल्यकाल इटारसी, मध्य प्रदेश में बीता तथा विवाहोपरांत ये मुंबई आ गईं। इनकी कहानियाँ जर्मन भाषा में अनूदित हुई हैं और वहाँ के पाठ्यक्रम पढ़ाई भी जा रही हैं।

कमलेश बख्शी हिंदुस्तानी प्रचार सभा मुंबई, मुंबई हिंदी विद्यापीठ, यूसुफ मेहर अली सेंटर, मुंबई प्रांतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, कथा लेखिका संघ, दिल्ली की आजीवन सदस्या हैं। ये मेयर रिलीफ फंड कमिटी की एग्जीक्यूटिव कमिटी में १९५८ से १९८९ तक रहीं। भारत सेवक समाज में १९९१ से १९९४ तक बोर्ड ऑफ स्टडीज (हिंदी) एस. एन. डी. टी. विश्वविद्यालय की सदस्या, हिंदुस्तानी प्रचार सभा की एग्जीक्यूटिव कमेटी में सदस्या, पूर्वावलोकन चयन समिति फिल्म खंड की सदस्य, मुंबई टी.वी. सेंटर ( २००० से २००६), पूर्वावलोकन चयन समिति सीरियल की सदस्या, मुंबई टीवी सेंटर (२००० से २००६) हैं।

इन्हें समय-समय पर अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है जिनमें् स्टेट फेडरेशन ऑफ यूनेस्को एसोसिएशन सम्मान (१९८३), 'नया मोड़'श्रेष्ठ रचना के रूप में पुरस्कृत (१९८०), सोवियत वूमेन अवार्ड (१९८१), संयोग कला मंच मुंबई सम्मान (१९८९), सहस्राब्दी राष्ट्रीय हिंदी सेवा सम्मान दिल्ली (२०००), प्रियदर्शनी पुरस्कार श्री लेखराज रूपाली मेमोरियल अवॉर्ड, सरस्वती साहित्य परिषद सम्मान, इटारसी (२००७), राजभाषा हीरक जयंती समारोह 'आशिर्वाद सारस्वत' सम्मान (२००९), कुतुबनुमा सम्मान (२०१०), सियाटिल (अमेरिका) में पंजाबी लेखक सभा द्वारा सम्मान (२०१३)। 'देश, समाज और साहित्य', महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत (२०१५)।

**रचना संसार :**

**उपन्यास :** कच्चे पक्के (१९८०), सुरंग के बाहर (१९८१), अंतहीन भटकन (१९८२), दिशा खोजती जिंदगियाँ (२०००), जिनी यहीं रहेगी (२००४), विधि चंद (१९८४), अतीत से गुजरते (२००९), अंतहीन भटकन (२००५)। कहानी संग्रह : जो कहूँगी सच कहूँगी (१९७९),

नया मोड़ (१९८४), कब तक (१९८९), मयार्दा (२०००), सावधान ब्रिज आइस्ड है (२००२), उखड़ा वृक्ष से जुदा (२००२), चेहरे की तलाश (२००७), प्रेम संबंधों की कहानियाँ (२००९), प्रतिनिधि कहानियाँ (२०१३), बे गड्डी चढ़ गई (पंजाबी) (२०१६), महानगर की कहानियाँ (२०१८)। यात्रा वृतांत : नील गगन तले (२००४), यादों में बसा विदेश (२०१६)। **लेख संग्रह** : देश, समाज, साहित्य (२०१५)।

**अन्य भाषाओं में अनुवाद :** उपन्यास और पाँच कहानी संग्रह् गुजराती, कोंकणी, सिंधी, स्विस, जर्मन, उर्दू , इंग्लिश में।

**विशेषांक :** संचेतना, (२००८), साहित्य समर्था (२०१५), सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया पत्रिका (२०१७)।

**शीघ्र प्रकाशित रचनाएँ :** मेरा हेनरी, तीन लघुकथाएँ, संस्मरण (शेष - अशेष), दो कविता संग्रह।

८-ए, आनंद नगर,
फॉरजेट
मुंबई -४०००३६.

# मेरी रचना प्रक्रिया

**कमलेश बख्शी**

मेरे लेखन की शुरूआत कहानी से नहीं बल्कि लेखों से हुई है। विवाहोपरांत जब मुंबई (तब बंबई) में बसना हुआ तो अन्य साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं के साथ-साथ नवभारत टाइम्स भी लेने लगी थी। एक दिन पढ़ा कि 'नारी नौकरी करे या नहीं' पर पाठकों के विचार आमंत्रित थे। मैंने एक छोटा सा लेख लिख कर भेज दिया। आने वाले रविवार में छपा। यह पहली प्रकाशित रचना थी। देख कर बहुत खुशी हुई। नवभारत टाइम्स के संपादक श्री हरिशंकर द्विवेदी थे। उनका फोन आया और उन्होंने लेख की सराहना की तथा ऑफिस उन दिनों मैं टाइम्स की इमारत के बहुत नजदीक रहती थी।

मिलने पर उन्होंने 'जीवन परिमल' कॉलम में लिखने का आग्रह किया। जबकि मुझे इस तरह के लेखन का कोई अनुभव नहीं था। उन्होंने समझाया और आश्वस्त किया कि तुम जरूर अच्छा लिख सकोगी। उनका यह भी सुझाव था नवभारत टाइम्स की अपनी जो लाइब्रेरी थी, मैं उसमें थोड़ा समय बैठा करूँ। वहाँ देश की आजादी से जुड़ी महिलाओं के भाषणों की कटिंग के साथ-साथ उन पर छपे समाचारों की कटिंग भी उपलब्ध है। उन्हें आधार बनाकर लेख तैयार किया जा सकता है। साथ ही उन्होंने छोटा कमरा दिखाया जहाँ बैठकर मैं पढ़ने-लिखने का काम कर सकती थी।

इस प्रकार गद्य लेखन का सिलसिला चल पड़ा। महिलाओं पर अनेक लेख लिखे। एक लेख याद आ रहा है, जिसका शीर्षक और विषय था 'साड़ी', काफी शोध के बाद यह लेख लिखा था। इस लेखन का श्रेय श्री हरिशंकर जी के प्रोत्साहन को जाता है। वरना मुझ जैसी संकोची प्रवृत्ति की व्यक्ति का छपना शुरू ही ना हो पाता। यों बचपन से ही छिटपुट कविताएँ तो मैं लिखती ही आ रही थी। कहानियाँ लिखने का सिलसिला भी शुरू हो चुका था। बचपन की धुँधली यादों की कई पात्र में आ गए, आ रहे थे। टाइम्स में सत्यकाम विद्यालंकार जी ने बाल साहित्य के अंतर्गत 'धर्मयुग' में बच्चों के लिए भी लिखवाया था।

उन्हीं दिनों हिम्मत जुटा कर मैंने एक कहानी पंडित सत्यकाम विद्यालंकार जी को दे दी। पढ़कर उन्होंने इन शब्दों में प्रशंसा की, 'तूने लिखी? अच्छी है।' फिर तो संस्कृति का पत्र भी आ गया। उन्हीं दिनों बख्शी जी के साथ दक्षिण भारत की यात्रा का संयोग हुआ। एक माह तक हम खूब घूमते रहे। इस पूरी यात्रा का वर्णन लिखकर 'विश्वामित्र' में भेज दिया जो धारावाहिक रूप में छपा,

विश्वामित्र का ऑफिस उन दिनों फोर्ट था। यह सन् १९५६ या ५७ की बात है। इस प्रकार अब तक मैं 'नवभारत', 'धर्म-युग' और 'विश्वामित्र' में छप चुकी थी। फिर यह हुआ कि सत्यकाम जी को दी कहानी 'धर्मयुग' में छपती, इससे पहले वे पद मुक्त हो गए और कहानी बिना छपे ही लौट आई। यह एक अनुभव था। तब तक पंडित विद्यालंकार के साथ ऐसे स्नेहपूर्ण संबंध से जुड़ गई थी कि उन्हें 'पापा' कहने लगी थी। वे जान गए थे कि कहानी के लौटने से मेरे मन को ठेस लगी होगी। उन्होंने फोन कर पितृत्व स्नेह से कहा, कहानी अच्छी है पर हर के अपने विचार होते हैं। रचना को कमजोर मत मानना।

'नवभारत टाइम्स' में लिखती रहने से १९५७-५८ फिल्म फेयर अवार्ड कार्यक्रम का निमंत्रण भी मिला। कार्यक्रम रीगल में था। आस-पास बैठे फिल्म एक्टर एक्ट्रेस के बीच ग्लैमर की दुनिया से पहला साक्षात्कार हुआ। उसके बाद घर गृहस्थी की जिम्मेदारियों चलते लेखन में एक लंबा अंतराल आ गया। तीनों बेटियाँ तैराकी में विशेष योग्यता हासिल कर राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय प्रतियोगिताएँ जीतने लगी थीं। अत: उन्हें समय देना अनिवार्य था। इस बीच कुछ छुटपुट जरूर लिखा पर जमकर कोई काम नहीं हो पाया। आकाशवाणी पर रचनाएँ आती रहीं। इन दिनों, 'सारिका' लिया करती थी। एक अंक में नवलेखन अंक के लिए रचनाएँ भेजने का आमंत्रण था। 'धर्मयुग' से लौटी रचना 'संदेशी दादा' वहाँ भेज दी। कहानी छपी और पाठकों के ढेर सारे पत्र आए। कई भाषाओं के अनुवादकों ने अनुवाद की अनुमति माँगी थी, मैंने अनुमति दे दी।

इटारसी मुंबई तक का सफर कहीं न कहीं कहानियों में बिखरा पड़ा है। आत्मकथा भी साहित्य की विधा है। लेखक जब अपने अनुभव को कागज पर उतारता है तो वह उसमें समाज, देश, राजनीति के साथ-साथ अपनी जिंदगी के उतार-चढ़ाव, सुख-दुख व संघर्ष सब को समेटते हुए लिखता है। अपने का इतिहास बहुतों ने लिखा है। यदि कोई नि:संकोच अपने अतीत व वर्तमान को व्यक्त कर सके तो निश्चित रूप से लेखक का व्यक्तित्व पारदर्शी रूप में उभर कर सामने आएगा। हालांकि पारदर्शी लिखना आसान नहीं है। कोई विरले ही इसे लिख पाते हैं। दूसरों को छोटा और गलत करना, अपनी आत्मश्लाघा करना-ये सब तो इंसान की फितरत है। सच पूछा जाए तो व्यक्ति स्वयं को भी पूर्ण रूप से कहाँ समझ पाता है। अपने भीतर वह द्वंद्व, गलत फहमियाँ और शंकाएँ पाले रखता है। उसी आधार पर दूसरों पर दोषारोपण कर स्वयं को सही साबित करता है।

विचार में कथ्य कहानी की जान है। परिवेश, भाषा-शिल्प कथा को जीवंत बनाने में उपयोगी हैं। कथ्य समाज के जिस टुकड़े से जुड़ा है उस परिवेश की भाषा को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। पात्र किस वर्ग का है? उसकी उम्र क्या है? आज कहानियों की भाषा कृत्रिम नहीं जीवन के यथार्थ की अभिव्यक्ति पांडित्य प्रदर्शन में नहीं हो सकती। आज कहानी व्यक्ति को उसकी समग्रता में देखने का प्रयास करती है। दुरूह, जटिल, अस्पष्ट कहानी की भाषा से मैं सहमत नहीं हूँ। देसी-विदेशी व प्रांतीय शब्द जो हिंदी में घुलमिल गए हों, इसमें सहज स्वाभाविक प्रवाह होता भाषा में सौंदर्य और बोधकता के बिंब, प्रतीक व सांकेतिकता का प्रयोग होता है। इसके उपयोग से भाषा

दुरूह न हो जाए अन्यथा कहानी सहज-सरल अभिव्यक्ति, प्रवाह और अपनी स्वाभाविकता खो देगी। मेरी भाषा सरल आकाशवाणी के कारण हुई-उनका आग्रह होता था-भाषा सरल हो, जिसे आम श्रोता आसानी से सके।

कई रचनाकार किसी कहानी आंदोलन से जुड़कर उसके नाम पर कहानियाँ लिखने लगे। जैसे सचेतन कहानी, नई कहानी, समानांतर कहानी, अकहानी आदि। पर मैं किसी वाद, आंदोलन या प्रवाह को लेकर नहीं लिखती। जो भी पात्र आस-पास गुजरे चाहे वह दलित हों, जिन्होंने भी मेरी संवेदना को छुआ, रचनाकार को प्रभावित किया। वहीं कलम चलने लगी। मैं जहाँ रहती हूँ वहाँ आसपास ही कई पात्र मिल गए-शोषित स्त्रियाँ, घर काम करने वाली औरतें, उनके बच्चे, उन पर लिखा। मैं बहुत नजदीक से देखे पात्रों को ही चुनती हूँ , वहीं से कथानक मिलता है ताकि पाठक को कि अपने आस-पास की बातें हो रही हैं। कल्पित यथार्थ नहीं बल्कि अनुभवगत यथार्थ... स्त्री असमानता से उपजे शोषण का विरोध करती है पुरुष का विरोध नहीं करती... पर चाहती है कई कहानियों का कथ्य बनना।

दूसरों का लिखा पढ़ती हूँ। सराहती हूँ। बहुत अच्छा लिखा जा चुका है। की पीढ़ी भी बहुत अच्छा लिख रही है। लेखकों ने परिवेश और व्यक्ति के मूल्यांकन की प्रक्रिया में नए भाव बोध की स्थापना की है। आज कहानी व्यक्ति को उसकी समग्रता में देखने का प्रयास है। व्यक्ति और परिवेश में तादात्म्य है। यथार्थ के साथ पात्रों के अंतर्द्वंद्व और अधिक गहराई से आने लगे हैं। पर मैं उनके लिखे से या उनका पढ़कर इस प्रकार प्रभावित नहीं होती कि उनकी तरह लिखने का प्रयास करूँ या वही शैली अपनाऊँ। मैं जैसा लिखती हूँ वैसा ही लिखती हूँ। यह बात अलग है कि लेखन में अपने आप परिवर्तन आता है। नई पीढ़ी संवेदना और शिल्प प्रयोग के साथ कथा लिखने में जुड़ी है।

संविधान के दिए समानता के अधिकार तो केवल कागज पर रह गए। शिक्षित और अथोर्पार्जन करने वाली स्त्री ने पुरानी रूढ़ियाँ तोड़ जब-जब आर्थिक स्वतंत्रता और अधिकारों की ओर कदम बढ़ाया तो राह में नैतिकता चरित्र रोड़े बनकर खड़े हो गए। समय के साथ समय की मान्यताओं और धारणाओं में बदलाव आया। फिर भी जब-जब स्त्री ने अपने व्यक्तित्व को स्थापित करना चाहा तब-तब उसे पुरुष के अहम् से मर्मांतक संघर्ष करना पड़ा।

मेरे विचार से विमेन-लिब पाश्चात्य देशों में पुरुष अत्याचारों से तंग अपने को उनसे मुक्त करने का अभियान था। विदेशों में जन्मी-पली इस विचारधारा ने हमारे देश की प्रबुद्ध स्त्रियों को भी प्रभावित किया है। हर जगह उसकी चर्चा हुई। इस आंदोलन ने लेखिकाओं को भी प्रभावित किया। वे इससे अछूती कैसे रहतीं। खूब लिखा।

सदियों से सामाजिक नियम, मयार्दाओं तहत जिस अग्निपरीक्षा से रोज गुजरती थी, वह अनुभव स्त्री होने के नाते लेखिकाओं ने भी अपने आस-पास देखा सुना था, भोगा भी था। औरत

की पीड़ा औरत ही अभिव्यक्त कर सकती है। उन्होंने स्त्री की मानसिकता को गहराई से समझा। औरत के आस-पास जकड़ा ढकोसलों का जाल और जूझती अनेक स्त्री पात्रों का सृजन उन्होंने किया। अत्याचार और शोषण का विरोध करते जीवंत स्त्री पात्र भी कहानियों व उपन्यासों में आये। देश की आधी आबादी चेत रही है, फिर भी उत्पीड़न बंद कहाँ हुआ है? तरीके बदल जाते हैं। ऐसी बातों का भी सृजन हुआ जिन्होंने स्त्री बंधनहीन उन्मुक्त या मुक्त स्त्री-पुरुष संबंधों को सही बताया। तृप्ति-अतृप्ति। शरीर और पेट की भूख की तुलना, बिना विवाह संतान, यह सब पश्चिम के बढ़ते प्रभाव के नतीजे हैं। आज महानगर में यह सब सहज भाव से लिया जा रहा है। ङ्ककङ्ख और ङ्कघङ्ख दो साल साथ रहे फिर हो गए। कपल थे सिंगल हो गए। बॉलीवुड और टेलीवुड का प्रभाव भी गहरा रहा है। पर यह तो नारी मुक्ति नहीं है। यह सब तो जीवन में भटकाव और बिखराव ला रहा है। आए दिन हम हत्याओं और आत्महत्याओं के विषय में पढ़ते हैं। औरत व्यक्ति बनने का देखते-देखते वस्तु बन गई है। इससे स्वस्थ समाज का निर्माण नहीं होगा। हर देश की अपनी संस्कृति और संस्कार होते हैं। हमारी संस्कृति सबको समेटकर संयुक्त परिवार वाली रही है। स्त्री अपने पति परिवार के रिश्तों से जुड़कर सब को सम्मान सेवा देती आई है, देती रहेगी। देह स्त्री है वह जिस तरह चाहे उसका उपयोग करे इसमें मैं सहमत नहीं हूँ। यही कुछ हो रहा है। जिस पुरुष से मुक्ति चाहती है उसी को अपने को परोसती है। यह अपने को नीचे गिराना है, गिर रही है। स्त्री किस पुरुष के विरोध में है, मुख्यत: पति, भाई, पुत्र से नहीं। मुक्ति पुरुष से नहीं। उस मानसिकता से जो स्त्री को समान नहीं मानना चाहता। समाज द्वारा स्त्री पर थोपे ढकोसले का विरोध करनेवाली चेतना की मैं समर्थक हूँ। मेरा यह विश्वास है कि स्त्री को घर-परिवार या पुरुष से मुक्ति नहीं चाहिए। पर साथ ही वह भी नहीं चाहती कि कोई उसे देवी बनाकर तो पूजे पर कथित रूप से उसकी उपेक्षा करके कोने में फेंक दे।

मेरे लिए कहानी के अतिरिक्त अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम उपन्यास है। कहानी में व्यक्ति का रेखांकन होता है पर उपन्यास में व्यक्ति के साथ-साथ व्यापक सामाजिक परिवेश पर से लिखा जा सकता है। इनमें आर्थिक स्थितियों और राजनीतिक परिस्थितियों के अनेक प्रश्न समस्याओं से जूझते पात्र, पुरानी रूढ़ियों, कुरीतियों से लड़ते व्यक्ति, जाति और वर्ण भेद की समस्या की शिकार लोग। स्त्री-शोषण के आयाम, आम आदमी की विडंबनाएँ, चारों ओर बहुत कुछ ऐसा है जो विस्तार से में आ सकता है। आज आतंक और आतंकवाद का डटकर मुकाबला न कर पाने वाली सरकार पर लिखा जा रहा है। उपन्यासों में बहुत कुछ समेटा जा सकता है। उपन्यास एक वृक्ष की तरह है। एक मुख्य पात्र या एक से अधिक पात्र जिसकी तस्वीर अंतर में, सोच में, में होती है। उसका बीजारोपण होता है। अंकुर से पौधा बनता है। उपन्यास की केंद्रीय अंतर्वस्तु दिमाग में होती है। टुकड़े-टुकड़े में लिखती हूँ। फिर पूर्ण कुछ कटता है कुछ जुड़ता है।

आज ऐसे साहित्य की देश के जनमानस को और भी अधिक आवश्यकता है जो आम आदमी को से भर रही सांप्रदायिकता, संकुचितता के कारण हिंसक नृशंस लीला का अंत करने में समर्थ हो, जनता में विवेक जगा सके। भेड़ चाल की तरह जनता बिना सोचे समझे एक दूसरे पर टूट पड़े, सांप्रदायिक दंगों के विषाक्त कीटाणु-जीवाणु फैलाने वाले मुट्ठी भर चेहरों से नकाब उतरें जनता

भड़काकर नेता गण घरों में आराम से बैठ जाते हैं। उनका कोई नहीं मरता दंगे में? आम जनता के घरों के दीप बुझते हैं। आम जनता न दंगे करती है न करवाती है, पर दंगों में बार-बार मारी जाती है। यह सब इधर की रचनाओं में आ रहा है। सारे दंगा फसादों में बड़ा हाथ राजनीति का ही है। इन सब का पदार्फाश करने वाली रचनाएँ आ रही हैं जो पाठक को भीतर तक हिला देती हैं।

उपन्यास, कविता, कहानी और नाटक सभी विधाओं में ये चीजें आ रही हैं। पर बार-बार सचेत करने पर भी जनता नेताओं हाथ की कठपुतली बन जाती है। उन्होंने इशारा किया और शुरू हो गया उत्पात। आम आदमी मरता है और नेता 'जेड' सुरक्षा में घूमता है।

मेरी दस पुस्तकों के अनुवाद मराठी भाषा में हुए हैं। एक पुस्तक गुजराती व एक जर्मन में भी प्रकाशित है। कुछ कहानियों का अंग्रेजी सिंधी कोंकणी में अनुवाद हुआ है। उर्दू में भी कहानियों का लिप्यांतरण होकर पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं। पर पुस्तक अभी नहीं आई है। पंजाबी में स्वयं लिखी कहानियों की पुस्तक आ गई है। अंग्रेजी कहानी संग्रह आ गया है।

यह ठीक है कि स्त्री-स्त्री की पीड़ा को समझ लेगी। व्यक्त करेंगी। लेकिन पुरुष भी तो उसके आस-पास है। पिता, पुत्र, पति, भाई। क्या वह उसके अंतर तन में प्रवेश नहीं करती। स्त्री ने स्त्री ही नहीं पुरुष का चित्रण भी बहुत सूक्ष्मता और गहराई से किया है। पुरुष ने भी उसी संवेदनाओं के साथ स्त्री पात्रों चित्रण किया है। रिश्तों को टूटते, छटपटाहट की अभिव्यक्ति लेखकों ने भी सूक्ष्मता से की है। यह मैं नहीं मानती कि केवल लेखिकाओं ने ही उस द्वंद्व को गहराई से पकड़ा है। दोनों ने स्त्री-पुरुष के जटिल संबंधों का सूक्ष्म निरीक्षण किया है। नारी अस्मिता, विश्लेषण दोनों की रचनाओं मिलते हैं। रचनाकार स्त्री हो या पुरुष दोनों इसी धरती पर हैं। मेरे लेखन में परिवार की ओर से कोई बाधा नहीं हुई। मैं पत्नी व माँ होने की जिम्मेदारी बखूबी निभाती रही।

# दिशाहीन जिंदगियों को दिखाता उपन्यास

**डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय**

समकालीन हिंदी कथा साहित्य में एक महत्वपूर्ण नाम कमलेश बक्शी का है। इन्होंने कहानी और उपन्यास दोनों ही क्षेत्रों में महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ अर्जित की हैं। इनके उपन्यासों में एक महत्वपूर्ण उपन्यास 'दिशा खोजती जिंदगियाँ' है। इस उपन्यास में लेखिका ने समकालीन जीवन के को बड़ी संजीदगी के साथ उभारा है। वर्तमान दौर में मनुष्य किस तरह स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं से जूझ रहा है और महंगी दवाइयाँ तथा चिकित्सा प्रणाली उसके संघर्ष को कई गुना बढ़ा रही है। इसका एक सुंदर उदाहरण इस उपन्यास में दिखलाई पड़ता है। इस उपन्यास की कथा को सुनीता, डॉ. नीलेश शाह, अतिया बेगम, वासंती, दीपा, संजय, सारिका इत्यादि पात्रों के माध्यम से निर्मित किया गया है। इसमें अस्पताल की दुनिया के सच के साथ-साथ मॉडलिंग की दुनिया, हत्या, प्रतिशोध, बलात्कार जैसी संदर्भों के द्वारा लेखिका ने अपने समय के यथार्थ को उकेरा है।

हमारे पितृसत्तात्मक समाज स्त्री को किस तरह कमतर आँका जाता है और उसमें निहित संभावनाओं को दबाकर रखा जाता है, इसकी भी पड़ताल इस उपन्यास में की गई है। लेखिका का मानना है कि स्त्री भले ही पुरुष से शारीरिक शक्ति में कमतर हो पर यदि उसके साथ कोई अन्याय हो रहा तो उसे सक्रिय प्रतिरोध करना चाहिए और उसका कथन है कि स्त्री शारीरिक बल में अवश्य पुरुष से कम बैठेगी पर वह एक से मुकाबला तो कर ही सकती है। लड़की हूँ इसलिए यूं छुई-मुई-सी हो जाऊँ? नहीं... नहीं मम्मी-लड़की को अपने आप को शक्तिशाली बनाना चाहिए। सच यह है कि पुरुष आ गया-बस भय के मारे ही स्त्री के हाथ-पैर ठंडे पड़ जाते हैं। पर आत्मविश्वास बल देता है। बस, नारी अपने को अबला न माने यही उचित होगा। (दिशा खोजती जिंदगियाँ, पृष्ठ - २७)

इस प्रकार लेखिका का स्पष्ट मत है कि नारी को बनने की जरूरत नहीं है। उसे अपने समय की चुनौतियों से जूझने के लिए स्वयं को तैयार करना चाहिए। चूंकि हम समाज से ज्यादा अपेक्षा नहीं कर सकते इसीलिए नारी को चाहिए कि वह स्वयं ही अपने समक्ष उपस्थित चुनौतियों का डटकर सामना करे और स्वयं के साथ होने अन्याय से बचे। लेखिका का नारी संबंधी दृष्टिकोण परंपरा और आधुनिकता का सम्मिश्रण है, जो नारी के प्रति अपेक्षाकृत संतुलित दृष्टिकोण लेकर इस उपन्यास में आई है।

डॉ. नीलेश शाह तथा डॉ. सुनीता झवेरी के संबंध के माध्यम से लेखिका स्त्री-पुरुष संबंधों की जटिलता को उभारती है। हमारा समाज किस स्त्री-पुरुष संबंध को आसानी से स्वीकार नहीं करता

और जब दोषारोपण का प्रश्न आता है तो पुलिस गलती का आरोप भी स्त्री पर लगा देती है। इस तरफ भी लेखिका का स्पष्ट संकेत है। हमारा समाज अपनी कुंठाओं और विसंगतियों के कारण किस तरह स्त्री के प्रति खुले से विचार नहीं कर पाता और उसके प्रति मानवीयता और सहानुभूति नहीं दे पाता। इसका भी एक सुंदर उदाहरण इस उपन्यास में दिखलाई पड़ता है। समाज में किस तरह हिंसा, बहसीपन, बलात्कार इत्यादि बढ़ता जा रहा है। इसके लिए फिल्में और विज्ञापन किस तरह जिम्मेदार हैं, इस पर भी ने विचार किया है। लेखिका ने डॉ जोशी के माध्यम से यह प्रतिपादित किया है कि पत्र-पत्रिकाओं द्वारा खबरें छापने महिला संस्थाओं द्वारा जुलूस निकालने के बावजूद बलात्कार की घटनाएँ कम होने के बजाय बढ़ती ही जा रही हैं। इसके लिए मॉडलिंग की दुनिया भी जिम्मेदार है और भी जिम्मेदार है 'जो लेखिका के ही शब्द में जो पैसे के लिए नंगी हो जाती हैं।' (दिशा खोजती जिंदगियाँ, पृष्ठ - १०५)

लेखिका ने बलात्कार की समस्या पर विचार करने के साथ साथ बलात्कारी को क्या दंड दिया जाए इस पर भी गंभीरतापूर्वक विचार किया है। इसमें डॉ और डॉक्टर झवेरी की बातचीत के माध्यम से बलात्कारी को दी जाने वाली सजा के संबंध में लिखा है कि 'बलात्कारी को मृत्युदंड... नहीं, उसे नपुंसक करके छोड़ देना ठीक होगा, 'दीपा ने आक्रोश में कहा-'अपराधी दंड कहाँ भोगता है... अरे साल-छह महीने की सजा भी कोई होती है इस जघन्य अपराध की' (दिशा खोजती जिंदगियाँ, पृष्ठ - १०५) कहने का आशय यह है कि लेखिका ने नारी जीवन के बहुस्तरीय प्रश्नों और संदर्भों को पूरी तटस्थता के साथ चित्रित किया है और यह स्थापित करना चाहा है कि नारी का संघर्ष पुरुष की तुलना ज्यादा कठिन है। वह नारी होने के कारण भी न केवल भेदभाव की शिकार होती है अपितु अनेक प्रकार की समस्याओं से जूझती भी है। इसीलिए नारी जीवन का यथार्थ अपेक्षाकृत ज्यादा कष्टप्रद और भयावह है, जहाँ न केवल भयंकर अंतर्द्वंद है अपितु एक विशेष प्रकार का सूनापन व खोखलापन है। हमारे समय और समाज का यह कटु यथार्थ है कि समय के थपेड़े खाने के कारण उनकी जिंदगियाँ खोखली हो जाती हैं और उनका मन एक दिशा की तलाश करता रहता है।

लेखिका ने उपन्यास के फलक को बढ़ाने के लिए हॉस्टल के संदर्भ को भी प्रस्तुत किया पाक-शास्त्र से लेकर ड्राइविंग तक के ज्ञान पर टिप्पणी की है। हमारी न्याय व्यवस्था कितनी धीमी अव्यावहारिक एवं अप्रासंगिक है और उसके माध्यम से सच्चे न्याय का मिल पाना कितना मुश्किल है। इसकी भी छानबीन इस उपन्यास में की गई है। इसके अलावा अस्पताल का जीवन इलाज की पद्धति डॉक्टरों के जीवन में घटने वाली घटनाओं के माध्यम से इस उपन्यास के यथार्थ को व्यापकता प्रदान की गई है। लेखिका अपने समय और समाज के प्रति दायित्व बोध से युक्त है। जिसके कारण वह समाज में घटित हो रही चोरी, दुर्घटना, सांप्रदायिकता, वैमनस्य, महँगाई, बेरोजगारी इत्यादि पर प्रतिक्रिया व्यक्त करती है। हमने तमाम आधुनिकताओं के बावजूद किस तरह का समाज निर्मित किया है, यह लेखिका के वैचारिक केंद्र में है। देश के अलग-अलग हिस्सों में किस तरह अलगाववाद, क्षेत्रवाद व भाषावाद पैदा किया जाता रहा है और उसके कारण

सामाजिक समरसता को भंग करने का प्रयास होता रहा है, यह भी लेखिका के दृष्टिक्षेप से बच नहीं पाया है।

इस उपन्यास की भाषा अत्यंत सहज, सरल और स्वाभाविक है। लेखिका ने पात्रानुकूल भाषा का न केवल प्रयोग किया है अपितु वह अपनी अभिव्यंजना में अत्यधिक सटीक एवं सार्थक है। क्योंकि यह लघुकाय उपन्यास है और ऐसा लगता है पाठ्यक्रम में रखने के उद्देश्य से लिखा गया है, अत: इसका शिल्प भी अत्यंत रोचक, सहज और पठनीय है। यह उपन्यास केवल अपने समय और समाज से जूझने का प्रयास भर नहीं है अपितु चिकित्सा के क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार, अनैतिकता, अतिशय व्यावसायिकता तथा सरकारी अस्पतालों में भी जनता साथ होने वाले दुर्व्यवहार को उजागर करता है और संतुलित लेखकीय दृष्टि से समाज में व्याप्त बुराइयों का आकलन करता है।

संक्षेप में कथ्य और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से यह एक पठनीय और उल्लेखनीय उपन्यास है। जिसके लिए किसी पाठक को अलग से प्रयास करने की जरूरत नहीं बल्कि वह इस उपन्यास की भाषा शैली से एकात्मीय जुड़ाव महसूस करता है और उसे लगता है मानो यह उपन्यास स्वयं उसके जीवन अथवा आस-पास की घटनाओं का दस्तावेज है। इस तरह अपने समग्र स्वरूप में 'दिशा खोजती जिंदगियाँ' एक महत्वपूर्ण उपन्यास है।

अध्यक्ष, हिंदी विभाग
मुंबई विश्वविद्यालय, मुंबई।

# कच्चे पक्के रास्ते : मंजिल के रास्तों का संघर्ष

**डॉ. माधुरी छेड़ा**

कमलेश बख्शी हिंदी की उन कथाकारों में हैं जो लंबे समय से खामोश रहकर अपने सृजन में जुटी हुई हैं। उनके लोकप्रिय व प्रसिद्ध उपन्यासों में 'कच्चे पक्के रास्ते' का स्थान सबसे ऊपर है. एक पठनीय उपन्यास होने के साथ-साथ यह उपन्यास समकालीन मध्यम वर्गीय समाज की विडंबनाओं को ऐसी भाषा में व्यक्त करता है कि शहर के मध्यवर्गीय और ग्रामीण समाज के जीवन में घिरे अवसाद को आपके भीतर स्थापित कर देता है, समूचे उपन्यास पर अवसाद की यह छाया सतत मंडराती रहती है।

भारतीय स्वतंत्रता के बाद का दृश्य जिसे जनता ने एक सुनहले स्वप्न के रूप में देखा था, वह सुबह उठते ही स्वप्न के टूट जाने की अनुभूति में बदलकर आम आदमी को उदास कर जाता है, जिसकी अनुगूँज उपन्यास में सुनायी देती है।

इस उपन्यास के केंद्र में है डॉ. रजनीश की जीवन-कथा है पर यहाँ डॉ. रजनीश कोई विशेष व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत नहीं हैं। जब भी बात भारतीय समाज के मध्यवर्गीय मूल्यों के टकराहट की होती है, तब पात्रों का आलेखन विशिष्ट व्यक्तित्व के रूप में न होकर प्रतिनिधि के रूप में एक व्यापक समाज का प्रतिनिधित्व करते हुए दिखाया जाता है। डॉ. रजनीश की जीवन गाथा भी समकालीन समाज की यथार्थ तस्वीर प्रस्तुत करती है।

गाँव के निर्धन परिवार में जन्मे रजनीश को लेकर माता-पिता स्वप्न देखते हैं कि बेटा बड़ा होकर घर की दरिद्रता दूर करेगा। रजनीश के बाबा यानी पिता जब भी जोर-जोर से राम-राम जपते, वह समझ जाता, बाबा स्वप्न देखने लगे हैं। राम-धुन के साथ धरती पर लौट आते हैं। यथार्थ की दुनिया में, जो कष्टदायक है, उसका रोल नंबर न देख बाबा का आपे से बाहर हो जाना स्वाभाविक था। आशावादी बाबा के मन में उसके भविष्य को लेकर अंकुर प्रस्फुटित अवश्य हो गया था। (पृष्ठ ८) यह स्वप्न कमोबेश हर मध्यवर्गीय परिवार का होता है।

रजनीश के पिता ने स्वप्न देखा था, उसके डॉक्टर बनने का और उसी स्वप्न को लेकर वह प्रथम वर्ष की पढ़ाई में जुट गया था, पर युवावस्था का एक और सच है इश्क! और रजनीश भी इससे बच न सका। श्रीमंत घराने की नीलिमा से दिल लगा बैठा और पढ़ाई से ध्यान हट गया। हालांकि जीवन के कटु यथार्थ की समझ थी उसमें और वह अच्छी तरह समझ रहा था कि उसकी इस प्रणय-कथा का कोई भविष्य नहीं है, फिर भी वह भावनाओं में बह गया और प्रथम वर्ष में ही फेल हो गया।

बाबा बहुत हताश हो गए। तूने यह ताज मुझे पहना दिया। साल का सत्यानाश कर दिया। पकी खेती जलानेवाली बात की तूने। ये लपटें मुझे भी निगल जाएँगी। (पृष्ठ ५) रजनीश को बहुत पछतावा हुआ और उसने बाबा से एक और अवसर माँगकर पढ़ने का वचन दिया और फिर सफलता भी पायी। अब वह डाक्टर बन गया था। उसकी नियुक्ति गाँव में हो गयी। वहाँ गरीब परिवार की मोतिया से परिचय हुआ और वह उसे अच्छी लगी। उसे लगा वह उसकी जीवन साथी बन सकती है। पर जब बहुत दिनों तक वह उसे न दिखी तो पूछने पर पता चला कि उसकी शादी हो गयी और वह यहाँ से चली गयी है। वह धीरे-धीरे मरीजों की भीड़ में खो गया। इसी बीच उसके अभिभावक डॉ. पाठक ने अपनी बेटी नीलू के लिए कहा तो वह सब को पसंद आ गयी और उसकी घर-गृहस्थी चल पड़ी। पर फिर धीरे-धीरे उसे पता चला मोतिया का ब्याह नहीं हुआ था बल्कि उसे बेच दिया गया था और वह कोठे पर पहुँचा दी गयी थी। तब से वह अपनी प्रेक्टिस के साथ-साथ मोतिया को भी ढूँढने लगा और आखिर ढूँढ निकाला। मोतिया ने उसका सौदा करनेवाले को मार डाला और जेल चली गयी थी। आखिर उसकी मुलाकात जेल में ही हुई। डॉ.रजनीश ने पूरी कोशिश की कि एक बार फिर उसकी जिंदगी सँवर जाए। इसीलिए सजा पूरी होने पर वही उसे लेने गया आखिर उसके रहने की व्यवस्था डॉ. पाठक के घर हो गयी। दोनों पति-पत्नी उसे बेटी मानने लगे। रजनीश ने उसे नर्स का कोर्स पूरा करवाकर अस्पतालमें नौकरी दिलवा दी और उसे फिर से घर बसाने का अनुरोध किया। वह भी गृहस्थी बसाना चाहती थी। पर सुकुमार और डॉ. वर्मा जैसा हर व्यक्ति उसका अतीत जानकर उसका उपभोग करना चाहता था। उसे सस्ता माल समझा जा रहा था। पर कोई भी उसे अपनाकर सामाजिक स्वीकृति देना नहीं चाहता था। डॉ. वर्मा फ्लैट दिखाने के बहाने उस पर जोर-जबरदस्ती करता है, तब वह अपने को ही संबोधित करते हुए कहती है, उठ मोतिया तू नयी जिंदगी खोजती फिर रही है न वह अब मौत में ही मिलेगी। मौत के गले में बाहें डाल... वही दूल्हा चिता घर होगी बिना अतीत कुरेदे तुम्हें समेट लेगी। (पृष्ठ १३९) और इस प्रकार अंत में निराश होकर उसने इमारत के ऊपर से कूदकर अपनी जान दे दी। आशाओं और स्वप्नों से भरी लड़की का असमय करुण अंत हो गया। रजनीश के जीवन का एक कोना मानो खाली हो गया। उधर नीलिमा भी कैंसर जैसी बीमारी का शिकार होकर अंत में मृत्यु को प्राप्त हुई। उसके अंतिम समय में रजनीश उसकी सेवा करता रहा। उसके पिता ने एक जानेमाने श्रीमत घराने में उसकी शादी कर मान लिया कि बेटी खुश रहेगी। पर संवेदशील नीलिमा उस प्रदर्शन और दंभ से भरे परिवार में नहीं समा पायी। तब परिवार ने भी उसकी इस हद तक उपेक्षा कर दी कि उसके बच्चे भी उससे छीन लिए। अंत में वह बच्चों को देखने और मिलने को तरसते हुए इस दुनिया से चली गयी।

उधर रजनीश के जिन माँ-बाप ने अनेक कष्ट सहकर उसे पढ़ाया, उसके डॉक्टर बनने के बाद सुख के दिन देखने का सपना देखा, वही उसकी शादी के बाद बहू के उपेक्षित व्यवहार से आहत होकर मौन हो गए और माँ भीतर ही भीतर दुखी होकर चल बसी।

उसकी प्रेक्टिस अच्छी खासी चलने लगी और उसने बंगला बना लिया खूब अच्छे से सेटल हो गया। पर माँ-पिता के कष्ट, उनके साथं नीलू के व्यवाहर, मोतिया और नीलिमा का दर्दनाक अंत

ये सब उसके संवेदनशील मन को मथते रहे।

यूँ देखा जाए तो यह एक सिंपल सी रोजमर्रा की कहानी लगती है। पर इसमें भारतीय समाज की विडंबनाओं के कई कोण छिपे हुए हैं। यह उपन्यास कई प्रश्नों को उठाता है। दहेज, स्त्री-शोषण, मध्यवर्ग के स्वप्न-भंग, ग्रामीण समाज का अभावों से पूर्ण जीवन-संघर्ष, मूलभूत आवश्यकताओं से भी वंचित ग्रामवासी और उनके दुखदर्द ! केंद्र में रजनीश है और उसी के माध्यम से इन प्रश्नों के प्रति ध्यान आकर्षित किया गया है।

आजादी के इतने वर्षों के बाद भी कुल जनता के एक विशाल वर्ग को दाल-रोटी जुटाने के लिए इतना संघर्ष करना पड़े तो यह हमारे जनतंत्र की विफलता का प्रमाण है। आज भी दूर-दराज के लोगों को स्वास्थ्य संबंधी मूलभूत सुविधाएँ भी उपलब्ध न हो यह शर्म की बात है। दहेज का दैत्य विवाह योग्य कन्या और उसके पूरे परिवार को अपने नागपाश में लपेट लेता है। मोतिया इसी व्यापक समस्या को व्यक्त करनेवाला पात्र है। पिता जानता है कि वह बेटी को ब्याह नहीं रहा है, उसका सौदा कर रहा है। और उसे गर्त की दलदल में उतार रहा है, पर वह विवश है ऐसा करने के लिए. कौन पिता चाहेगा बेटी का ऐसा अंजाम! पर भारत में लाखों मोतिया हैं और उनके पिता भी हैं। यह हम सब के लिए शर्मनाक है कि आज इक्कीसवीं सदी में भी हम इस मानसिकता को नहीं बदल पाए हैं। तुलना में मध्यवर्गीय समाज के नौजवान पहले की अपेक्षा अधिक शिक्षित हो रहे हैं। पर शादी के बाजार में शिक्षित युवक की कीमत और भी बढ़ गयी है। पात्र की योग्यता या गुण कोई मायने नहीं रखते। परिणामस्वरूप हमारी बेटियाँ या तो कोठों की भेंट चढ़ जाती हैं या अग्नि की ! क्या हमारा समाज इतना असंवेदनशील हो चुका है। पर क्या दूसरे छोर पर वे बेटियाँ सुखी हैं जिनके पिता दहेज की मोटी रकम चुकाने में समर्थ हैं? नीलिमा का उदाहरण और उसका हश्र हमारे सामने है। बेटी निर्धन परिवार की हो या श्रीमंत परिवार की, अभी भी हमारा समाज बेटियों के मामले अत्यंत असंवेदनशील है। हमारे मिथकों का अनुकरण कर हम भले ही कुलदेवियों को पूजते हों, पर घर की देवियों का हमारी नजर में कोई महत्व नहीं है। अर्थात बेटियाँ गरीब परिवार से हों या अमीर से उन्हें पितृसत्तात्मक समाज में न्याय नहीं मिल रहा है।

डॉ. पाठक और रजनीश दोनों मिलकर ग्रामीण समाज की एक और समस्या पर यहाँ काम करते हैं। इस समस्या को वाणी देते हुए रजनीश डॉ.पाठक से कहता है-डाक्टर साहब, ग्रामों का अभिशाप अधिक संतान ही है। उनका जन्म-मरण, पालन, विवाह के चक्कर में पालक की कमर टूट जाती है, कर्ज चढ़ते हैं जिन्हें कई पीढ़ियाँ चुकाती हैं। कम संतान से गरीबी भी कम होगी, शिक्षा भी बढ़ेगी। ( पृष्ठ ७८)

इसी विचार को अमल में लाने के लिए डॉ. पाठक गाँव में चलता-फिरता दवाखाना भेजते हैं जिसके साथ रजनीश भी जाता है। उनकी योजना थी कि वहाँ के ग्रामजनों में परिवार-नियोजन के प्रति जागरूकता फैलाएँ और साथ-साथ ऑपरेशन भी करें तथा अन्य रोगियों को भी देखें। पर इस प्रयास में उन्हें आंशिक सफलता ही मिल पाती है। वहाँ पहुँचने पर उन्हें यह भी पता चलता है कि

किसान क्यों अधिक संतानों को जन्म देते हैं। आज तक शायद ही किसी ने उस मुद्दे की ओर ध्यान खींचा हो। किसानों की औरतों ने मोतिया से कहा -खेती का काम कौन करेगा। किसान को तो छह बेटे भी कम पड़ते हैं। किसानों की है कमी ये काम शहर में करो। मानस की कमी से तो हमें नुकसान होगा। (पृष्ठ ११८) इस अभियान से डॉ. रजनीश और डॉ. गुप्ता दोनों ही असंतुष्ट और निराश होते हैं। यहाँ रजनीश और डॉ. गुप्ता की निराशा देखकर अनायास ही कमलेश्वर की नागमणि कहानी याद आ गयी, जिसका नायक गांधीजी के आह्वान पर दक्षिण भारत में हिंदी प्रचार के लिए जाता है, पर वहाँ की ग्रामीण जनता की अरुचि देखकर अत्यंत निराश हो जाता है।

हालांकि आज दूर-दर्शन व सेटेलाइट के विकास के साथ ग्रामीण क्षेत्रों में भी काफी विकास हुआ है, पर दहेज का दूषण आज भी बेटियों की जिंदगी बर्बाद कर रहा है। इतने विकास के बाद भी जातिवाद, आतंकवाद जैसी समस्याओं से हम जूझ रहे हैं।

इस प्रकार कमलेश बख्शी का यह उपन्यास अत्यंत संवेदनशील स्तर पर मध्यवर्गीय जीवन के प्रश्नों को उठाने के साथ-साथ डॉ.रजनीश जैसे युवकों के अंतर्द्वंद, मनोमंथन,मौन वेदना को भी व्यक्त करता है। स्वावलंबी होने के बावजूद पारिवारिक संतुलन बनाए रखने के लिए वह जिस धैर्य का परिचय देता है, वह काबिले तारीफ है। इस चरित्र में प्रेरित करने की योग्यता मौजूद है। माता-पिता के प्रति उसका स्नेह, सम्मान, संवेदना अंत तक बनी रहती है। नीलू की शिकायतों के बावजूद माता-पिता को सुखी करने के उसके प्रयत्न बने रहते हैं। तो दूसरी ओर वह नीलू के साथ अपने संबंधों में भी कटुता आने नहीं देता। उसका यह पक्ष मन को सुखद अनुभूति दे जाता है।

उपन्यास सरल भाषा में लिखा हुआ एक पठनीय उपन्यास है। ऐसे उपन्यासों को पाठ्यक्रम में शामिल किया जाए तो वह छात्रों को प्रेरित करने के साथ-साथ उन्हें ग्रामीण समस्याओं का परिचय भी देगा।

मेफेयर बिल्डिंग, तीसरी मंजिल,
फ्लैट नं. १०, वी. एन. रोड,
चर्चगेट, मुंबई-४०० ०२०

# अतीत से गुजरते : एक त्रासद कथा

**डा. सुमनिका सेठी**

कमलेश बक्शी बड़ी संवेदनशील कथाकार हैं और खासी रचनात्मक से वे जीवन को उसके तमाम रंग-वर्णों में, तमाम पहलुओं और विडंबनाओं के साथ परिपूर्णता से आँकती आई हैं।

प्रस्तुत उपन्यास 'अतीत से गुज़रते' में अतीत के सिंहावलोकन की टेकनीक का इस्तेमाल हुआ है - और यह उपन्यास यथार्थवादी डिटेलिंग की शैली का उपन्यास है - जिसमें दैनंदिन जीवन छोटे-बड़े ब्यौरे, वर्णनों, संवादों के जरिए एक विश्वसनीय जीवन-बिंब सिरजा जाता है। यह उपन्यास कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। मृत्यु की कगार पर जा खड़े होने का अजीब बोध, और वहाँ खड़े होकर पीछे मुड़कर देखना, बीते जीवन का आकलन करना। अस्पताल के बिस्तर पर एक थमा हुआ, हुआ, परबस और रीतता हुआ जीवन-जहाँ इन्द्रियाँ और शरीर के शेष अंग उपांग तो शिथिल होते जा रहे हैं पर मन और चेतना की लौ बुझी नहीं है। और यह चेतना जिए हुए जीवन की स्मृतियों में डूब-उतरा रही है-और गतिशील है। अतीत का यह जानकी नामक एक स्त्री-जीवन का है, जो एक बेटी, १३ साल की उम्र में ब्याह दी गई एक वधू, एक पत्नी, एक माँ की दुर्वह भूमिकाओं को जीती है - और हर मोड़ पर गहरे मानसिक आघातों और संघर्षों से जूझती है। यह स्त्री अब आसन्न मृत्यु को भी, बोध को भी, उसी खामोश जुझारूपन के भाव से झेल रही है। यानी जैसे उसने जीवन की दुर्वह विडंबनाओं को स्वीकार किया वैसे ही मृत्यु को भी स्वीकार कर चुकी है - पर भीतर-भीतर एक तड़प और छटपटाहट भी बनी हुई है। उसके खामोश दु:ख भीतर ही भीतर कैंसर बन गए हैं - एक बार रोग को पछाड़ के वह खड़ी हुई पर दूसरी बार रोग ने फिर पलट के वार किया है - शरीर खंडहर में तब्दील हो गया है। लेकिन स्मृतियाँ इस खंडहर में नि:शब्द गूंज रही हैं -प्रेतात्माओं की तरह घूम रही हैं, रही हैं। और स्मृति के माध्यम से ही पूरे जीवन से वह मानों फिर गुज़रती है।

यों पूरा उपन्यास इन दो समयों में विचरण करता है-आता-जाता रहता है। और विशेषता यह भी है कि जीवन की विडंबनाओं को अतीत-कथा के माध्यम से जितना और जिस तरह कहा गया है, के बिन्दु पर भी यह विडंबना बोध कम नहीं है। उपन्यास का पट कई धागों, रग-रेशों वाला है - लेकिन पूरी तस्वीर में एक उदास भंगिमा है -बाहर से खामोश पर भीतर से आँसू और रक्त से भीगी एक काठ की गुड़िया की भंगिमा। जीवन के अनेक पड़ावों में के लिए जीवन-जीते रहने का क्रम, निरंतर घुटन एवं हनन, अपमान एवं अवमूल्यन के विष-घूँट चुपचाप पीना। और इस सब के बीच भी पति, संतान एवं घर की हर चीज़ से गहरी सम्पृक्ति, एवं राग महसूस करना। जानकी की यह पंक्ति गृहस्थ जीवन के इस द्वन्द्व को मूर्त करती-''फिर अपने को ताड़ना देती हूँ, जिनसे तिरस्कृत होती हूँ,

उन्हीं के लिए मन क्यों बेचैन हो जाता है। क्यों खाना पीना हराम हो जाता है, क्यों नींद उड़ जाती है।''

मृत्युशैया पर पड़े-पड़े भी उनकी चर्या, उनकी सुविधाओं का ख्याल उसे रहता है - और यह सब सच्चाई भरी दैनंदिन तफसीलों में उपन्यास के पन्नों पर उभरा है। मृत्यु के करीब पहुँच कर देखा गया यह जीवन मानों डूबते सूरज की लाल-सुनहरी आभा में रंगा हुआ है - मनोमालिन्य की गर्द बैठ चुकी है, पूर्वग्रहों की तलछट से ऊपर तमाम अनुभव आत्मा के सच्चे दस्तावेज़ बन हैं।

लेकिन फिर यह उपन्यास क्या केवल जानकी-कथा है - एक घरेलू स्त्री के दुखों की, जद्दोजहद और संघर्ष की कथा। वह जानकी जो अपना परिचय कुछ यों देती है -''मैं एक साधारण लड़की, साधारण परिवार की, साधारण नाक-नक्श, रूप रंग कद की लड़की, साधारण बेटी, साधारण बहू, फिर माँ...।' दरअसल खुद को साधारण कहने में एक पीड़ा छुपी हुई है - क्योंकि दुनिया ने यही तमगा उसे दिया है - अन्यथा दूसरों के लिए जीने वाले, और इतने आघातों में भी खड़े रहने वाले पात्र साधारण तो नहीं हैं।

तो शायद विचार का बिन्दु यह था जानकी की ही नहीं - उसके ब्याज से यह उन सबकी कथा भी है जो उसकी चेतना के दायरे में प्रतिबिंबित हैं। उसके सुख-दु:ख का अर्थ यानी तमाम परिवार के सुख-दुख, स्वप्न एवं आशाएँ। इस दायरे में हैं उनके खामोश, नेक और कर्मठ पति, कटु सास, सात बेटियाँ और उम्र में गुज़र जाने वाला बेटा राजेश। इस 'रियलिस्मय' एवं दैनंदिन तफसीलों वाले रियलिस्मक की टेकनीक में हर सदस्य की अन्तर कथा उभर आती है। ऐसा लगता है एक उपन्यास में कई उपन्यासों के बीज प्रस्फुटित होने को हैं। यही क्यों इस परिवार से आगे उनके देवर-जेठ के परिवार नाते रिश्तेदारों की भी जीवन रेखाएँ उपन्यास के अंतरिक्ष में उभरती है। कथा में मरणासन्न माँ का केन्द्र तो है पर यह केन्द्र मानों दूर दूर तक अपनी परिधि में समाया हुआ है।

यह उपन्यास जानकी की बेजुबानी और दु:खों की तर्जुमानी करते हुए उन तमाम स्त्री-चरित्रों को भी है जो किसी न किसी रूप में जानकी से जुड़े हैं। जानकी की सात बेटियों की अन्तर्कथाएँ उपन्यास को स्त्री-जाति के दु:खों का महाकाव्य बना देती हैं। तमाम स्त्री पात्र हैं जो एक अन्यायपूर्ण एवं क्रूर पुरुषवादी समाज में जीने को अभिशप्त हैं। यह अन्याय भरा समाज जितना घरों चारदिवारी के बाहर प्रसारित है उतना ही घर के भीतर भी है। इन साधारण स्त्री नामों पर जरा गौर करें तो लगेगा कि मिथक पुराण एवं महाकाव्यों के कदीम एवं पुरातन नाम ही लंबे डग भरते हुए बीसवीं सदी के पन्नों पर आ खड़े हुए हैं - जानकी, उमा, गंगा ...। सभी तो गहरे एकाकीपन और निर्वासन की शिकार होती रही हैं - छली जाती रही हैं। लेकिन दूसरी ओर यह भी है कि इन चरित्रों में एक जीवट है, एक अजब नमनीयता - कि परिस्थितियों के थपेड़े झेलती हुई भी खड़ी रहती हैं, जीवित रहती हैं, भागती पलायन नहीं करती। यह जरूर है कि वे कोई बहुत बड़ा क्रांतिकारी कदम नहीं उठातीं - लेकिन हार भी नहीं मानतीं। उपन्यास के पृष्ठ १०१ पर जानकी के बिस्तर के करीब जो स्त्री जलने के कारण आई है - उसे देख जानकी सोचती है -''सोचती होगी और तेल था, अधजली बची तो घर की स्थिति ... पुरुष का व्यवहार बदलेगा, क्यों स्त्री अपने को जलाकर मौत में ही अपने दु:खों की मुक्ति देख लेती हैं। क्यों नहीं दूसरे रास्ते अपनाती।''

विवाह संस्था जो शायद स्त्री के लिए पुरुष-आश्रय का एक ऐसा रूप है, जहां पत्नीत्व का एक है, मातृत्व की पदवी उससे भी उच्चतर है - लेकिन उपन्यास में ये तमाम पड़ाव महत्वपूर्ण होकर भी खोखले सिद्ध होने लगते हैं। ये स्त्री की अंतिम शरण स्थलियाँ तो नहीं ही हैं। मातृत्व भी इससे तय होगा कि वह बेटे पैदा करती है या बेटियाँ। जो पात्र विवाहित - वहाँ भी संबंधों में कुछ न कुछ दरका हुआ है, विडंबनात्मक है। दूसरी तरफ जिनका विवाह नहीं हुआ - उनमें अलग तरह की हताशाएँ हैं। जानकी को आगत मृत्यु की नीम रोशनी में यह सत्य दिखने लगता है ... ''मुझे लगा था कि क्या लड़कियों के लिए एक रास्ता है - शादी और पुरुष का संरक्षण। हम दूसरी बात क्यों नहीं सोच सकते... '' माँ बार-बार अपनी अविवाहिता बेटियों से नौकरी करने को कहती है ... बार बार उसे लगता है कि अशिक्षा कितनी बड़ी अपंगता है।

जानकी तो एक पारंपरिक रोल मॉडल है बहू का - खुद को भूल कर घर परिवार को पूर्णत: समर्पित। लेकिन क्या हासिल है उसका - सास की नज़र में 'अपढ़-गँवार' और सात-सात 'बेटियों का बोझ उनके बेटे पर लाद देने वाली...' और वे बेटियाँ भी सास के सौन्दर्य प्रतिमानों से निहायत कमशक्ल। सात बेटियाँ सास ने भी पैदा थीं - पर वे जीवित नहीं रह पाईं। जानकी का जीवन तो हादसों, सदमों, आघातों की एक शृंखला सी है। मृत्यु उसके जीवन में मोटिफ बन गई है -कुछ-कुछ अंतर पर वह सफेद मील के पत्थरों की तरह खड़ी मिलती है। १३ साल की उम्र में यानी माता-पिता भाई से बिलगाव-फिर ससुराल आते ही माँ का सिधार जाना-फिर बाबा भी चले जाते हैं और बचता है नन्हा भाई जो काका के परिवार के हाशिए पर जैसे-तैसे जी रहा है। जानकी के ही शब्दों में - ''बाबा की बरसी पर गई तो किशोर प्रौढ़-सा लग रहा था। केवल रोटी और उतरे कपड़े दे काका ने उसे दिन-रात कोल्हू के बैल की तरह इस्तेमाल किया है।'' फिर भी जानकी की यह मजबूरी की संयुक्त परिवार में उसे साथ कैसे रखे - ''मैं वहाँ रह नहीं सकती थी। उसे साथ ला नहीं सकती संयुक्त परिवार की बहू, जो गरीब तो थी ही अनाथ भी हो गई।'' और यह भाई भी पाकिस्तान बनने के बाद लाहौर में काम ढूंढ़ने जाता है और दंगाइयों के हाथों मार दिया जाता है।

पति-पत्नी में सब कुछ है पर साझेदारी नहीं है। जानकी एक बालिका-वधू के को जीवन भर ढोती रहती है और अंदर-अंदर धुंधवाती रहती है - क्योंकि उसके नेक एवं कर्मठ पति भी खामोश हैं और पत्नी के अन्तर्मन से बेगाने से हैं। दोनों नदी के दो किनारों से अलग चले जा रहे हैं। वह कहती है - ''मेरा जीवन खामोशियों से अंदर ही अंदर रिसते जख्मों-सा रहा।'' आज जब विद्वान गहन आघातों या ट्रॉमा के प्रभावों का विश्लेषण करते हैं तो पाते हैं कि ट्रॉमा शब्दों में नहीं ढल पाता - और सम्पूर्णत: तो शायद कभी भी नहीं - बस एक स्तब्धता एक खामोशी और ढेर सी चुप्पियाँ बची हैं - या फिर कुछेक नि:शब्द संकेत। शायद जानकी के भीतर की गहरी उदासी और खामोशी में भी ऐसा ही कुछ अंतर संबंध हो। और फिर जिन बेटियों के लिए वह तिरस्कार और अपमान सहती आई है, जिनके विवाह और खुशी के लिए तिल-तिल जलती है, उनसे भी उसे या अपनत्व मिला हो-ऐसा प्रतीत नहीं होता।

विवाह के नाम पर सबसे ज्यादा तो छली गई है गंगा। जानकी के ससुर के भाई अपने मंद बुद्धि

बेटे का विवाह एक पंद्रह-सोलह साल की भोली सी गरीब लड़की से करते हैं - पर उसका भोग करते हैं वह गंगा भागना चाहती है-पर अन्ततः उसे यह सब स्वीकार करके ही जीना पड़ता है और वह बच्चों को जन्म भी देती है। एक स्त्री की ऐसी त्रासदी पर जानकी की सास का निष्कर्ष कुछ यों है - ''स्त्री के भाग्य में क्या-क्या लिखा होता है, कोई नहीं जानता। बस का घूँट पी उसे ही पति मान चुपचाप रहती वह, जाएगी कहाँ। शादी के बाद मायके में स्थान लड़की के लिए रह नहीं जाता। गरीबी न होती तो क्या वे तुझे यहाँ देते, लाख खाता-पीता घर होता। ...''

फिर रमा का विवाह - जहाँ उसका पति भाइयों के घर ही नहीं - शराबी भी है और रमा के प्रति खासा क्रूर भी है। अन्ततः रमा भी ससुराल छोड़ देने को विवश हो जाती है और माता-पिता के घर में बेटे महेश के साथ आश्रय तो पाती है-पर अपनी बहनों द्वारा मन से स्वीकृत नहीं हो पाती।

एक और दायरा है, संदर्भ है जो इस उपन्यास को एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक-सामाजिक दस्तावेज़ बना देता है। यह दायरा है देश के विभाजन की दारुण परिस्थितियों का। यह एक विराट सामूहिक ट्रॉमा था-जिसने न जाने कितनों की जिंदगियाँ तहस-नहस कर दीं-उखाड़ दीं। लोग अपने घरों से बेघर हो गए-मूल से उखड़ इधर उधर फेंक दिए गए। धर्म के आधार पर देश के टुकड़े होने की तैयारी चल रही थी-हवाओं में विष घुल गया था, नदियों का मीठा जल घृणा से कटु-तिक्त हो गया था। जानकी का जो परिवार इस उपन्यास का केन्द्र है-जिसके बेहद विश्वसनीय ब्यौरे लेखिका ने दिए हैं-वह अविभाजित भारत के कराची शहर का एक सम्पन्न सिंधी परिवार है। स्थिति बिगड़ने पर उसे भी बाकी लोगों की तरह पलायन करना पड़ता है। उपन्यास में विभाजन के कुछेक वर्णन तो हैं -पर खूं-रेजी के वर्णन बहुत नहीं हैं-कम शब्दों में कुछेक संकेत -कठिन यथार्थ के। लेकिन अपनी सांकेतिकता मितव्ययता में भी ये मर्मांतक पीड़ा में डूबे से हैं। ''पाकिस्तान बन गया था। पंजाब से बहुत भयंकर खबरें आ रही थीं सिंध में उन दिनों खामोशी थी।'' लेकिन लोग खबरें सुनते और काँप-काँप जाते।

''उन उजड़े लोगों के चेहरे भयंकर थे, उन्हें देख भय सा फैलने लगा था। किराएदार सिक्ख लड़के को जब किसी ने मार डाला तो सबने सोच लिया कि अभी तो चले चलें .....'' कुछ अमीर लोग तो हवाई जहाज से गए पर शेष तो भेड़ बकरियों की मानिंद, रोते कलपते, भूख और ठंड से ठिठुरते, गट्ठर पर गट्ठर, पेटियाँ लिए इधर उधर जाने - या फिर पानी के जहाज पर सवार हो गए। इस सामूहिक उखड़ाव की बड़ी सच्ची तस्वीरें लेखिका ने उतारी हैं जो गहरे त्रासद प्रभाव छोड़ जाती हैं। पानी के जहाज पर लदे शरणार्थियों का वर्णन है जहाँ लोग सोते-सोते भय से चिल्लाने लगते हैं। ये 'बेघरत्व' होना, से उखड़ना एक मोटिफ बनता है उपन्यास का और पात्रों के जीवन में भी बार बार घटित होता है।

उसके बाद पैरों तले जमीन और सर पर छत जुटाने का संघर्ष शुरू होता है। दो कमरों में जानकी का परिवार गुज़र बसर करता है। फिर सांस्कृतिक परिवर्तन का सामना होता है ... ''टूटी फूटी हिंदी भाषा का मिश्रण सीख लिया था ... उन दिनों मैं अपनी आँखों से बदलती दुनिया देख आश्चर्यचकित रह जाती थी (पृष्ठ ४०) क्योंकि चार दिवारी के बाहर की दुनिया मैंने कब देखी थी, सुनी थी।''

जेठ-देवर के परिवारों से दूरियाँ बन रही थीं-धन जीवन शैलियों में अंतर के चलते ... तो दूसरी ओर निर्वासित लोगों का वृहत्तर समाज एक दूसरे के निकट आ गया था। सामूहिक चेतना प्रखर हुई थी क्योंकि ये उजड़े-उखड़े लोग एक दूसरे की परेशानी समझते थे। ''सादे ढंग से शादियाँ हो रही थीं ..... कुछ घबराए से थे ... फिर धीरे-धीरे उखड़े, उजड़े लोगों की परिस्थितियाँ भी बदलने लगीं।'' फिर यह एक वाक्य .... ''फिर बड़ी मेहनत से वहाँ के निवासियों के मुकाबले में खड़े हो सके।'' इस एक वाक्य के पीछे शरणार्थियों के कष्टों और श्रम का दीर्घ क्रम छुपा हुआ है।

मृत्यु भी एक है, बारंबार आने वाला अभिप्राय। जानकी की माँ और फिर पिता का चले जाना और फिर जाना भाई मुन्ना का। वह विभाजन की साम्प्रदायिकता की बलि चढ़ जाता है। यह बहुत बड़ा सदमा है-पर जानकी को बाद में खबर की तरह पता चलता है कि अपने दोस्त के साथ काम खोजने गया था -वहीं मारा गया। किसने मारा, कैसे मारा, क्यों मारा ... कुछ नहीं कहा गया। बस एक पंक्ति जो अचानक अँधेरा हो जाने का अनुभव जगाती है .... ''एक चिराग जो जल रहा था मायके का, असमय बुझ गया।''

दु:ख का पहाड़ ... काटे नहीं कटता बाँटने का कोई रास्ता नहीं ... बस खुद से खुद की बातें ... खामोश रुदन .. आँसुओं और रक्त से भीगी काठ की गुड़िया। जानकी तीसरी बार अनाथ हो जाती है - सपनों की कोंपलें ही जल जाती है। और फिर कई बेटियों के बाद जन्मा बेटा भी कैंसर बीमारी से जवानी में चला जाता है। यहाँ भी वर्णन बहुत विस्तृत नहीं - पर मर्मांतक पीड़ा से भरे हैं। उपन्यास का वर्तमान तो मृत्यु बोध से ग्रस्त है ही। अस्पताल के तमाम वर्णन मृत्यु बोध को गहराते हैं। उसे देखने आए लोगों का एक-एक शब्द जो जानकी कानों में पड़ता है-सब पर भावी मृत्यु की छाया मंडराती है। अस्पताल जाने से पहले जानकी बमुश्किल उठकर घर के कमरे कमरे जाती है-दीवारों और चीज़ों को स्नेह से छूती है ... यह अंतिम विदाई का बोध नहीं तो क्या है। अस्पताल के मरीज़ों के माध्यम से भी मृत्यु चेहरा बार बार दिखा रही है - चहलकदमी करती सुनाई पड़ती है। जानकी समझ गई है कि जनरल वार्ड में जब किसी पलंग के आगे पर्दा लग जाता है तो यह जीवन और मृत्यु के बीच का पर्दा होता है। मृत्यु के बाद कभी गहरा सन्नाटा पसर जाता है कभी रुदन, चीखें और सिसकियाँ भर जातीं। उपन्यास के अंतिम पन्नों पर यह स्त्री अपनी ही मृत्यु का दिवास्वप्न देखती है। कदम-कदम पर मृत्यु का सामना करने वाली यह स्त्री अपनी मृत्यु और उसके बाद के दृश्य इतने भास्वर रूप में देखे तो इसमें हैरानी ही क्या है।

उपन्यास में प्रत्यावर्तन भी कई जगह दिखाई पड़ता है। शुरू में दिखता है कि एक बार कैंसर पर जीत हासिल होने के बाद, कैंसर दुगनी शक्ति से फिर लौटकर आता है और शरीर भर में अपनी जड़ें फैला देता है। रमा का पति कई वर्षों के बाद एक दिन उसके सम्मुख खड़ा हो जाता है। उमा का टूटा हुआ विवाह कुछ अन्तराल के बाद फिर जुड़ता है। शरणार्थी जैसे भय और असुरक्षा में डूबे मुंबई के तट पर आए थे-अब धीरे धीरे पैरों तले जमीन जुटा पा रहे थे-वैसे ही जीवन उखड़-उखड़ कर उपन्यास के पात्रों के पास लौटता है।

उपन्यास में कराची का रूप तो नहीं उभर पाता-पर सीमित ढंग से मुंबई का दिक् और अहसास

तो साकार होता है। यहाँ मुंबई की सड़कें, बसें, ट्रामें, भीड़-भाड़, भाग-दौड़ और शोर नहीं उभरता क्योंकि यह एक घरेलू स्त्री के अन्तर्मन की दास्तां है-उसकी सोच के रंगमंचपर सब घटित दिखता है। फिर भी यह स्त्री बहुत हुआ तो शाम को महालक्ष्मी मंदिर या साधुबेला आश्रम प्रवचन सुनने जाती है। उसके पति ब्याज पर ऋण देने का काम करते हैं और शेयर खरीदा करते हैं। (सिंधी लोगों का यह भी एक व्यवसाय रहा है)। बेटियों के लिए फ्लैट लेने चिंताओं - योजनाओं में मुंबई की पहचान उभरती है। बेटी रमा के परिवार के वर्णन में मुंबई के घरों के भीतरी रूप उपस्थित होते हैं, जहाँ इंच-इंच जगह का इस्तेमाल होता है। बंबई अस्पताल, टाटा हॉस्पिटल, लोअर परेल फिल्म देखने जाना, सरदार की पाव-भाजी आदि थोड़े से नाम हैं मुंबई का एक दिक् खंड उभरता है - पर कहानी में मुंबई एक गतिशील एवं जीवंत पात्र नहीं बन पाती।

जो चीज़ उपन्यास में बेहद प्रामाणिक ढंग से उभरी है-वह है कैंसर के धीरे-धीरे शरीर में जमने की प्रक्रिया, उसके लक्षण, परीक्षण, निदान और मारक ट्रीटमेंट। देह में वाली तमाम संवेदनाओं और पीड़ाओं को लेखिका ने बखूबी मूर्त किया है। कैंसर के मरीज़ ही नहीं, उनके संबंधियों के डरे, उतरे हुए चेहरे भी पाठक को दिखाई पड़ने लगते हैं। मृत्यु के करीब पहुँच जानकी का खाना-पीना बन्द हो गया है। उसके लिए ग्लूकोज़ की बोतलें एक साथ में खरीद कर रख दी गईं हैं-जो बूँद बूँद उसके जिस्म में उतरती रहती हैं। महिला-वार्ड के दूसरे मरीज़ों के लिए आए भोजन की गंध उसे विचलित करती है। कभी गरम चाय पीने का जी चाहता है कि थका-टूटा हुआ शरीर खुल जाए। पर यह सब उसके लिए पीछे गया है। अस्पताल की सुबहों, शामों और रातों का वर्णन बेहद मूर्त और सजीव है। एक ओर यहाँ ठंडी यांत्रिकता से सब कार्य-व्यापार चला करता है, नर्सें आती-जाती रहती हैं, पर दूसरी ओर मरीजों और संबंधियों के भीतर रुदन और कराहें छुपी रहती हैं, संवेग फूट पड़ने को होते जानकी मृत्यु के द्वार तक पहुँचकर भी आत्मक्रेंद्रित नहीं हो पाती। बेटियों की घर-गृहस्थी की तकलीफों का बोध ऐसी स्थिति में भी शेष है। ङकैसी होङ्क, ङपहचान रही होङ्क जैसे वाक्य उसे जरूर दुखा जाते हैं - पर पति की उदासी के प्रति गहरी करुणा का भाव भी पाठक छू लेता है। वह किसी की खुशी में (कुंती का आयोजन) अपनी मृत्यु से बाधा नहीं डालना चाहती और एक खामोश जीवन की कथा की इतिश्री खामोश ढंग से करना चाहती है।

लेकिन जानकी कई प्रश्न उठाती है। उसमें एक नमनीयता बनी रहती है - वक्त के साथ वह को नये ढंग से समझ रही है और अपनी इच्छा से जीवन जीने को पाप नहीं मानती। रमा,भाई राजेश की मृत्यु के बाद पिता को सँभालती है, आगे चलकर रमा और जानकी, माँ और बेटी सखियों सरीखी हो जाती हैं। एक दूसरे को समझने लगती हैं। अन्त तक आते-आते है कि इस स्त्री ने अपनी अर्तदृष्टि से जीवन की तमाम दरारों और अन्तरालों को भर दिया है, तुच्छताओं पर विजय पा ली है। एक वैराग्य-भाव से ही सही, अन्याय को भी क्षमा करने की ताकत उसे मिल गई है।

अध्यक्ष, हिंदी विभाग
सोफाया महाविद्यालय, मुंबई

# युवा पीढ़ी के भटकाव को अभिव्यक्त करता उपन्यास : 'जिनी यहीं रहेगी'

**प्रवीण चंन्द्र बिष्ट**

'जिनी यहीं रहेगी' पूरी तरह से विदेशी धरती को केन्द्र में रखकर लिखा गया है। इस उपन्यास की शुरूआत में लेखिका ने 'विदेश से साक्षात्कार' नामक शीर्षक से विदेश में रह रहे भारतीयों साथ-साथ विदेशी लोगों से हुई बातचीत को रेखांकित किया है, साथ ही उन्होंने वहाँ के परिवेश को आत्मसात कर अभिव्यक्त किया है। वे महसूस करते हैं कि विदेश में रहते हुए, भारतीय अपनी मिट्टी की सुगंध को नहीं भुला पा रहे हैं। वे अपने देश में वापस लौटना तो हैं, लेकिन लौट नहीं पाते अर्थात उन्हें समझौता करना पड़ता है। विदेश में रह रहे भारतीयों का अपने देश, घर, व गाँव के प्रति अति आकर्षण दिखाई देता है। वे वहाँ रहते हुए भी अपने देश की खबरों पर नजर बनाए रखते हैं और साथ ही देश में घटित विषयों पर चर्चा करते हैं। वे राजीव गाँधी की हत्या की चर्चा करते हुए लेखिका से उस संबंध में इस तरह पूछते हैं, कि वह कह उठती है- 'जैसे हम उस घटना के चश्मदीद गवाह हैं दूर बैठे भी, बार-बार देश की स्थिति पर चर्चा करके भी संतुष्ट ना-देश, अपने घर की चिंता सभी को थी।' (जिनी यहीं रहेगी, पृष्ठ -७) वे इस बात को लेकर भी कशमकश में रहते हैं कि अपने बच्चों में भारतीय संस्कृति को किस तरह जिंदा रखा जाय। इस हेतु वे आपस में मिलकर तरह-तरह के सांस्कृतिक कार्यक्रमों जैसे होली, दिवाली, परब तथा स्वतंत्रता दिवस जैसे त्यौहारों का आयोजन करते हैं और इनमें सपरिवार बढ़चढ़कर बड़े ही उमंग के साथ हिस्सा लेते हैं। विदेश में रह रहे भारतीय अपनी संस्कृति को छोड़ पाने में असमर्थ हैं। वे अपने बच्चों को सेवाभाव, धर्म और संस्कृति से जोड़े रखना चाहते हैं। भारत गए सिख, पंजाबी, सिंधी सभी एकजुट होकर रहते हैं। गुरुद्वारे में कीर्तन के पश्चात प्रसाद व जलेबियाँ तथा पकौड़ी बाँटी जाती हैं, जिसे खाने के लिए सभी बच्चे बड़े ही उत्सुक रहते हैं। वे भारत से आए अपने नाना-नानी व दादा-दादी से इस तरह के पकवान बनाने का आग्रह करते हैं।

आज वैश्वीकरण के दौर में माता-पिता दोनों को धन अर्जन के लिए घर से बाहर निकलना पड़ता है। ऐसी स्थिति में न चाहते हुए भी उन्हें बच्चों को दिल पर पत्थर रखकर डे केयर सेंटर के हवाले करना पड़ता है। जिसके चलते बच्चों के लिए स्कूल के व छुट्टी के दिन, एक समान हो जाते हैं, यदि इस बीच कभी किन्हीं बच्चों के नाना-नानी या दादा-दादी कुछ समय के लिए भारत से वहाँ पहुँच जाते हैं तो बच्चों व उनके माता-पिता के लिए बहुत बड़ी राहत की बात होती है। साथ ही इन बुजुर्ग दंपतियों को नाती-पोतों के बीच समय बिताने का सुख प्राप्त होता है। आज गाँव से नव जवान

शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं, जिसके चलते गाँव खाली होते जा रहे हैं। यह चिंता का विषय है। हमारी सरकारें इस पर विचार कर रही हैं, साथ ही कोशिश में लगी हैं गाँव से लोग पलायन न करें, लेकिन आवश्यकता है कि लोगों को गाँव में आजीविका के साधन उपलब्ध कराया जाए। कोई भी व्यक्ति स्वेच्छा से न तो अपनी जन्मभूमि छोड़ना चाहता है, न गाँव और न ही देश। उसका अपना छोटा-सा गाँव ही उसके लिए संपूर्ण संसार से कम नहीं होता लेकिन वहाँ से पलायन करना उसकी मजबूरी है। अपनी पेट की आग बुझाने के लिए उसे इस तरह के कदम उठाने पड़ते हैं; तथापि शहरों में जाने के बाद भी ये लोग अपने गाँव को नहीं भुला पाते, और शहर में ही गाँव जैसे परिवेश को बनाने में जुट हैं, जिसे कनाडा के टोरंटो शहर के माध्यम से देखा जा सकता है-'कनाडा का महानगर टोरंटो; अनेक दार्शनिक स्थलों को देखा जिसमें साईंस सेंटर टावर के अतिरिक्त एक पार्क जो नया बना था। मिनी गाँव छोटे-छोटे घर स्टेशन ट्रेन कारें बसें पूरा गाँव बनाया गया था जो बहुत अच्छा लगा, मिनी विलेज।' (जिनी यहीं रहेगी, पृष्ठ -१९)

लेखिका ने इस उपन्यास के माध्यम से अमेरिका के विभिन्न पर्यटन क्षेत्रों का सुंदर वर्णन किया है साथ ही वहाँ के रहन-सहन, वेशभूषा, हाट-बाजार व पार्क, सेंटर टावर, स्टैच्यू ऑफ लिबर्टी आयरलैंड आदि का भी विशद वर्णन किया है। कभी-कभी को अमेरिका के अनेक स्थानों को देखते हुए भारत की याद आ जाती है। न्यूयॉर्क का मनहट्टन व्यापार का केंद्रबिंदु है। वहाँ के संदर्भ में बताते हुए लेखिका कहती है- 'मनहट्टन हाट डाग स्ट्रोंग काफी की महक देता है। सड़कें भरी कारों से, बसों से, ट्रेन से उतरती भीड़ बम्बई का वीटी और चर्चगेट याद आ गया। सुबह ऑफिस जल्दी ही खुल जाते हैं।' (जिनी यहीं रहेगी, पृष्ठ -२१)

प्रत्येक देश की संस्कृति रहन-सहन, खान-पान व रीति-रिवाज भिन्न-भिन्न होते हैं। सभी को अपने इन रीति-रिवाजों के साथ जीना आवश्यक होता है। अब यह बात भिन्न है कि एक के व्यक्ति को दूसरे देश के रीति-रिवाज रास नहीं आते या उनके साथ उसे समझौता करना पड़ता है जैसे जिनी के पिता भारतीय और माता अमेरिकी है। उसकी धारणा भारत को लेकर भिन्न है। वह अपने प्रेमी चार्ल्स से कहती है- 'भारत में औरतों पर बहुत बंधन हैं। वह के संबंध में चार्ल्स से कहती है कि 'तुम्हें विश्वास नहीं होगा वहाँ माँ-बाप लड़की के लिए पति तलाश करते हैं। वे कैसे एक-दूसरे को चाह सकते होंगे-बिना एक-दूसरे को जाने-कैसे शादी की इच्छा होती होगी?' (जीनी यहीं रहेगी, पृष्ठ -२३) इससे भी अधिक आश्चर्य बात यह है कि इस सब के बावजूद ये दम्पत्ति जीवन पर्यंत एक दूसरे का साथ निभाने के लिए प्रतिबद्ध रहते हैं।

इसके ठीक विपरीत विदेशों की स्थिति है। लेखिका ने विदेशों में प्रचलित तलाक और पुनर्विवाह की स्थिति को खुलकर हमारे सामने रखा है। वे देखती हैं कि का व्यक्ति एक दूसरे के साथ ज्यादा समय तक नहीं टिक पा रहा है और जो लोग पुनर्विवाह के लिए तैयार होते हैं, फिर चाहे वह स्त्री हो या पुरुष एक दूसरे के मन में, पहले से कुछ और अच्छा पाने की इच्छा रहती है। कभी-कभी ऐसी स्थिति में का सामना भी करना पड़ता है जिसके चलते कभी पुरुष का घर तक बिक जाता है

तो कभी स्त्री का। मार्थ्या, इसी तरह के षडयंत्र का शिकार हुई है। वह उदास और मायूस हो बताती है- 'मि. हेरी कहने लगा मकान बेच दो, तुम्हारा पैसा व्यापार में लगा दूँगा। कमाई बनी रहेगी। मकान के पैसे लेने के बाद उसमें बदलाव आने लगा। पहले लड़की को प्राइवेट स्कूल से निकलवाया सरकारी स्कूल में डलवाया। मेरे खर्च के लिए पैसा देना बंद कर दिया। मेरी कार थी पर गैस कैसे भरवाती बहुत कहने पर कहने लगा, 'जाओ जहाँ से आई हो।' मैंने कहा-'मेरे पैसे वापस दे दो।' तो हाथ उठाने लगा, मेरी सहेली की मदद से धोखे की रिपोर्ट पुलिस में की, अब केस किया है। (जिनी यहीं रहेगी, पृष्ठ - १८-१९) यहाँ यह गौर करने की आवश्यकता है कि विदेशों में रह रहे बच्चों को अपना जीवन चुनने की स्वतंत्रता होती है परंतु वे परिवारिक सुख से वंचित रह जाते हैं, और एक दूसरे के षड़यंत्रों का शिकार हो जाते हैं।

यदि हम भारतीय परिवेश में पल रहे बच्चों व विदेशों में पल रहे बच्चों की मानसिकता को लेकर बात करें तो दोनों में उनके परिवेश व के कारण अंतर देखने को मिलता है जैसे जिनी की चचेरी बहन गीता इसलिए किसी लड़की के साथ नहीं घूमती कि उसके माता-पिता नाराज होते हैं, जबकि विदेशी संस्कारों से पोषित जिनी किन्हीं परिस्थितियों बस हॉस्टल में रहने का निर्णय लेती है। इस बात से उसके माता-पिता दुखी हैं, उस पर कोई असर नहीं होता; उल्टा उसकी दृष्टि ज्यों ही उन पर पड़ती है तो वह महसूस करती है-'उसके माता-पिता के चेहरे शव से निर्जीव लगे। यह देख उसे अच्छा लगा-हों दुखी।' (जिनी यहीं रहेगी, पृष्ठ-३३) इस तरह विदेशी बच्चों में संवेदनहीनता बढ़ती ही रही है। उन्हें न तो माता-पिता की चिंता होती है और न ही भाई बहनों की, और न ही उनमें स्वयं के लिए कोई जायज निर्णय लेने की ही क्षमता होती है, थोथा अहंकार भरा होता है उनमें। उक्त सभी घटनाएँ जिनी के साथ भी घटती हैं इसीलिए अपने से बहन मारग्रेट और प्रेमी चार्ल्स की शादी का समाचार पाते ही वह बौखला उठती है और मन ही मन आशीर्वाद स्वरूप एक कठोर दिवा स्वप्न की कल्पना कर बैठती है-'दूर जाती कार दुर्घटनाग्रस्त हो उलट गई। लाल-लाल रक्त बह हाइवे को रंग रहा है। ट्रैफिक रुक है, पुलिस-एंबुलेंस पहुँच गई है। कार से बाहर निकाल रहे हैं ... सफेद ड्रेस पहने मारग्रेट को.... स्ट्रेचर पर रख रहे हैं... उसका बेजान हाथ लटक गया है, उसका मुँह ढक दिया है... और चार्ल्स माथे पर लगी हल्की खरोंच को रूमाल से पोंछता खड़ा है। मेरी यही शुभकामना है, तुम्हारे लिए।' (जिनी यहीं रहेगी, पृष्ठ -६०) कुछ समय पश्चात अपनी कजिन गीता के संपर्क में आने पर जिनी में क्रांतिकारी परिवर्तन आता है। गीता उसे भारतीय लेखकों की अंग्रेजी में अनुवादित पुस्तकें भेजती है, जहाँ भारतीय नारी परिवार को जोड़े रखने के लिए अपना संपूर्ण जीवन समर्पित कर देती वह अपने जीवन के हर पड़ाव में लगातार समझौते करते हुए आगे बढ़ती है; जिसका प्रभाव जिनी पर गहराई से पड़ने लगता है। वह अपने पिता में भारतीय नारी के गुण देखने लगती है। जो परिवार को जोड़े रखने के लिए अनिवार्य होते हैं।

विदेश में रह रहे भारतीय ही यहाँ की सुविधाओं के आदी हो गए हो लेकिन फिर भी भारत की संस्कृति को छोड़ नहीं पाते हैं। वे भले ही पेट की आग बुझाने के लिए घर से इतनी दूर चले आए हों, लेकिन उनका मन भारतीय संस्कृति व भारत में ही रमा रहता है, रमेश शाह अपनी बेटी जिनी के

हॉस्टल जाने की जिद पर मुँह लटकाए बैठे हैं। तब उनकी पत्नी पैगी उनसे कहती है- 'रोमेश तुम कुछ बोले नहीं। बीस साल से इस देश में रहते हुए भी तुम्हारे अंदर का इंडियन जिंदा है। लड़की का होस्टल में रहना हादसा जो मुँह लटका कर बैठ गए थे।' (जिनी यहीं रहेगी, पृष्ठ -३३) यह सुन रमेश शाह साहस जुटाकर भारतीय सभ्यता और संस्कृति को समय के अनुकूल बताते हुए, अपनी पत्नी पैगी पर बरस पड़ते हैं साथ ही एक लंबा-चौड़ा व्याख्यान देते हुए कहते हैं-'जब देखो तब कोसती क्या बुरा है इंडियन होने में, इंडियन पति-पत्नी बच्चों के साथ जिस तरह समझौता करके रहते हैं, यहाँ के लोग नहीं। हर काम के लिए वक्त होता है। कच्ची उम्र के बच्चे कुछ समझने को तैयार नहीं हैं। यही है, इस देश की देन, अब तुम भाषण मत देने सुविधाओं के, चाँद सितारों पर पहुँचने के, वह सब ठीक है। विज्ञान तरक्की कर रहा है, पर यह हमारे... तारे... जीते जागते... बच्चे। बुरी तरह लड़खड़ा रहे हैं। यह पीढ़ी शांति की खोज में भागती है इंडिया। यह भी तुम्हीं कहती हो।' (जिनी यहीं रहेगी, पृष्ठ -३३) रमेश शाह चाहते कि उनके बच्चे किसी विदेशी से विवाह न कर भारत में जाकर अपने लिए जीवन साथी चुनें। आज भी विदेशों में रह रहे अनेक परिवारों के बच्चे भले ही गोरे और गोरियों के साथ वहाँ घूमते हों लेकिन पत्नी के रूप में उन्हें भी इंडिया की लड़की ही पसंद है।

इस उपन्यास के माध्यम से हम देखते हैं कि आज विदेशों में रह रहे भारतीय अपनी संस्कृति, वेशभूषा, खान-पान और रहन-सहन के प्रति ज्यादा सजग दिखाई देते हैं जबकि भारत के बम्बई जैसे शहर में लोग भारतीय रीति-रिवाजों को छोड़ पाश्चात्य जीवन के ढर्रे में ढलने के लिए दिखाई देते हैं। यहाँ आपस में एक दूसरे से अपने आप को ज्यादा प्रगतिशील दिखाने की होड़ में ये लोग अपनी संस्कृति से कटते चले जा रहे हैं, इसीलिए जिनी कहती है-'पापा मैं भारतीय जीवन के निश्छल, नैसर्गिक रूप को देखना चाहती हूँ, आत्मीय घरेलूपन का स्वाद गीता की शादी पर अमेरिका में मिला। यहाँ मिलावट है, वहाँ मुझे शुद्ध हिंदुस्तान का टुकड़ा मिला, तभी तो आई। यहाँ इतने बड़े मुंबई में इंडिया नहीं मिल रहा।' (जिनी यहीं रहेगी, पृष्ठ -५३) जिनी की चिंता जायज है। आज भारत में रह रहे लोग भारतीय वस्तुओं की अपेक्षा वस्तुओं की ओर अधिक आकर्षित दिखाई देते हैं। फिर चाहे वह सजावट का सामान हो या दैनिक उपयोग की वस्तुएँ जिनका उपयोग करने में वे बड़प्पन महसूस करते हैं। इनके घरों में सिंगापुर की कोरल क्रोकरी, मैक्सिको स्टाइल का सूप, कैमरा, मिक्सर, कपड़े आदि विदेशी ही मिलते हैं; यहाँ कि जब फिल्मों की बात चलती है तो सिर्फ इंग्लिश फिल्मों की बात करते हैं और बोलने में भी अंग्रेजी का प्रयोग करना ज्यादा महत्वपूर्ण समझते हैं।

पाश्चात्य देशों की तरह भारत में भी एकल परिवार की परंपरा बढ़ती चली जा रही है जबकि एकल परिवार की संकल्पना चाहे पाश्चात्य देशों की हो अथवा अन्य किसी देश की। वह समाज व परिवार के लिए घातक ही सिद्ध हुई है, बच्चे दादा-दादी व परिवार के अन्य सदस्यों के प्यार से वंचित रह जाते हैं, साथ ही नवविवाहित दंपतियों के बीच आपसी नोकझोंक के समाधानार्थ घर में बुजुर्गों के न से परिवार लगातार टूटते जा रहे हैं, जिसके चलते बच्चे भी अपने को असुरक्षित महसूस करने लगते हैं, और कभी-कभी वे आत्महत्या तक भी कर लेते हैं। बच्चों के लगातार बढ़ते

आत्महत्या के आंकड़ों पर प्रिंसिपल साहब एक पिता से चर्चा करते ह-'टूटते परिवार इसका कारण हैं। बच्चे के भाव से ग्रसित हो जाते हैं, वही उन्हें कमजोर बना देता है। असंतुलित मस्तिष्क से ऐसे ही निर्णय ले लेते हैं।' (जिनी यहीं रहेगी, पृष्ठ -७२) बच्चों को इन स्थितियों से सुरक्षा प्रदान करने का एकमात्र साधन संयुक्त परिवार ही हैं, जहाँ वह अपने आप को सुरक्षित महसूस पाएँगे और परिवार के सभी सदस्यों के प्यार को पाते हुए संवेदनशील और जिम्मेदार नागरिक बन पाएँगे।

आज स्त्री-पुरुष मानसिकता को लेकर विचार करें तो देखते हैं कि वह चाहे भारतीय हो अथवा अमेरिकी दोनों की स्थितियाँ एक जैसी हैं। जिनी जब अपने प्रेमी चार्ल्स को अपने माता-पिता से लाती है तो चार्ल्स उसकी बहन माग्रेट की तरफ आकर्षित हो जाता है। धीरे-धीरे इन दोनों की मित्रता प्रगाढ़ हो जाती है जो जिनी के लिए असहनीय हो जाता है। जिनी की इस दशा को देखते हुए उसके पिता को अपने दिन याद आ जाते हैं कि किस तरह उच्च शिक्षा के लिए अमेरिका आया था। यहाँ उसकी मुलाकात 'पैगी' से हुई जो 'काफी भोली सुंदर-बस वह पागल हो गया था।' (जिनी यहीं रहेगी, पृष्ठ -२६) शादी के बाद 'भोली पेगी-फुफकारती-नागिन सी हो गई।' (जिनी यहीं रहेगी, पृष्ठ -२७) पैगी का पति रमेश भारतीय संस्कारों का लबादा ओढ़े, उसे निबाह रहा था। उसे भय लग रहा था कि कहीं पैगी तलाक ना दे दे-'बच्चों में गहरा मोह भय भर देता है। उसके सामने दुखी मित्र महेश्वरी था, जो शादी के बाद; चार साल भी साथ न रह पाया, क्योंकि विदेशी पत्नी समझौता न कर पाया। पाश्चात्य संस्कृति ना अपना पाया-बीफ-मटन ना खा पाया-अब तलाक के बाद आधा वेतन दो बच्चों को भेज रहा है-अब रह रहा है अकेला।' (जिनी यहीं रहेगी, पृष्ठ -२७) इस तरह जिनी के पिता में भारतीय संस्कार होने के कारण परिवार टूटने की कल्पना से ही वह काँप उठता है और अपनी पत्नी पैगी के समक्ष नतमस्तक हो जाता है। दूसरी ओर रमेश शाह को अपनी बेटी माग्रेट का देर रात तक चार्ल्स के साथ घूमना नहीं भाता तब वह 'पैगी' को भारतीय संस्कारों की दुहाई देते हैं। यह सुन बिफर जाती है और कह उठती है-'तुमने क्या किया था-तुम रमेश-शादी से दो साल पहले दो साल तक मेरे साथ ऐसे ही रहे थे न-तब तुम्हारी भारतीयता कहाँ गई थी-कोई तुम्हारी लड़की को ना छुएँ यह संभव नहीं..., इन बच्चों को कैसे सकेंगे...।' (जिनी यहीं रहेगी, पृष्ठ -२८) यहाँ संस्कारों का महत्त्व सिर्फ बच्चों पर थोपने तक सीमित रह जाता है जो मनुष्य के स्वार्थी व्यक्तित्व व झूठी प्रतिष्ठा को व्यक्त करता है।

औद्योगीकरण के दौर में जहाँ एक ओर व्यक्ति का जीवन मशीन बनकर रह गया है वहीं दूसरी ओर अपनी व्यक्तिगत समस्याओं को लेकर जूझते दिखाई दे रहे हैं। ऐसी स्थिति में बच्चों के लिए समय न निकाल पाने के कारण बच्चे उचित परवरिश से वंचित रह जाते हैं, साथ ही ये बच्चे स्वयं को उपेक्षित-अकेला व असुरक्षित-सा महसूस करने लगते हैं। परिणामस्वरूप ये अपने सहपाठियों के करीब होने लगते हैं और गलत दिशा में भटक जाते हैं और अपना खर्च चलाने के लिए स्कूल के अबोध लड़के-लड़कियों को ड्रग सप्लाई करने लगते हैं। इस संदर्भ में जिनी चिंता व्यक्त करते हुए कहती है् ङ्घर के वातावरण का प्रभाव सबसे पहले बच्चे की पढ़ाई पर है। बच्चा पढ़ाई में पिछड़ने लगे, उदास उखड़ा रहने लगे, तभी पालक या शिक्षक उन्हें संभाल लें-उन्हें स्नेह दें..... उनकी

समस्या समझ लें तो बच्चे ड्रग खा आनंद मिलेगा की गलत धारणा छोड़ दें, उधर बढ़ें ही न..... यदि उन्हें सुरक्षा-प्यार घर में मिलते रहा हो तो। (जिनी रहेगी, पृष्ठ -३५) आज जिनी स्वयं परिवार से अपने आप को असुरक्षित महसूस कर रही है जिसके परिणामस्वरूप वह अपनी माँ और भाई का अपमान कर शांति पा लेना चाहती थी किंतु खुद ही छटपटा उठती है- 'उसके अंदर बेचैनी... बाढ़ की नदी के पानी-सी कूल किनारे तोड़ थी... वह छटपटा गई... सिर टेबुल पर दे मारा, मुट्ठियाँ बंध गई.... जोर से चीखी। रो ली फिर भी अंदर के तूफान से घिरी थी..... वह दरवाजा बंद करती, भागती-भागती थी, सेंडी के पास गई.... वह अपने डैन में मित्रों सहित बैठी थी।' (जिनी यहीं रहेगी, पृष्ठ -६२) जिनी भी अन्य बच्चों की तरह रॉबर्ट के कहने पर ड्रग्स लेने लगती है- 'तीन लंबे कश से उसे लगा वह उड़ रही है, राकेट की तरह सीधे आकाश को छू लिया है.....।'(जिनी यहीं रहेगी, पृष्ठ -६२)

प्रत्येक देश का अपना एक भौगोलिक परिवेश होता है, जिसके वहाँ की वेशभूषा, रहन-सहन, खान-पान निर्धारित किया जाता है ताकि वहाँ पर रहने वाले लोग स्वस्थ और सुखी जीवन व्यतीत कर सकें, लेकिन आज व्यक्ति अपनी संस्कृति और संस्कारों को ताक पर रखकर उसके मूल के महत्व को जाने बिना उसकी अवहेलना कर भेड़ चाल चलने के लिए विवश दे रहा है, फिर चाहे वह भाषा के स्तर पर हो या वेशभूषा के। कहा भी गया है कि 'जैसा देश वैसा भेष'। इस संदर्भ में जिनी को अपने पापा की कही हुई बात याद आती है-'पापा की बात भी ठीक लगती है। भारत में अंग्रेजों ने राजकाल में भी 'जैसा देश वैसा भेष' नहीं किया, उल्टा हम अपने देश में भी अंग्रेजी पहनावा और अंग्रेजी भाषा को महत्व देते चले गए। हम अपना नया वर्ष मनाना भूल गए, अंग्रेजी न्यू ईयर धूमधाम से मनाते हैं। यही नहीं भारत में भी जिन अंग्रेजों ने पूरी जिंदगी दी, उनकी औरतों ने साड़ी नहीं पहनी, वह सब ठीक है पर कैसे कोई इस खुले वातावरण में घूमने वाले बच्चों को, संस्कृति की दुहाई देकर बाँधकर रख सकते हैं... बेटी शादी कर रही है, माँ-बाप जैसे मातम मना रहे हैं... हम कहीं के नहीं रहे... हमारी इज्जत.... उसे हँसी भी गई.....पूर्व और पश्चिम दो संस्कृतियाँ है... पश्चिम को सब चलता है.... पूर्व संस्कृति को मानने वाले के लिए, यह फाँसी पर चढ़ने जैसा ही है....।'(जिनी यहीं रहेगी, पृष्ठ -६८) इस प्रकार हर तरह से मनन चिंतन के बावजूद जिनी बिना माता-पिता को सूचित किए अपने सहपाठी राबर्ट से शादी कर है। लेकिन कुछ ही समय पश्चात जिनी को लगने लगता है कि राबर्ट को जिनी से अधिक पैसा और सुख-सुविधाएँ प्रिय हैं। जिनी महसूस करती है कि 'राबर्ट पी-एच. डी. करने के बाद, जिनी को अपने से बहुत कम पढ़ी-लिखी समझने लगा है। अच्छी नौकरी पर उसके कम का भरसक मजाक उड़ाता।'(जिनी यहीं रहेगी, पृष्ठ -७०-७१)

आज हम स्त्री-विमर्श, स्त्री-स्वातंत्र्य आंदोलन जैसे कितने ही आंदोलन क्यों न चला लें इससे कोई भी बड़ी क्रांति होना संभव नहीं है। यदि हम सच में स्त्री को उसका हक दिलाना चाहते हैं तो सर्वप्रथम एक स्त्री को दूसरी स्त्री का करना होगा, साथ ही पुरुष को भी स्त्री को इज्जत और सम्मान देना होगा। अन्यथा स्त्री विमर्श और आंदोलन व्यर्थ प्रतीत होंगें। अत: जब तक हमारे व्यावहारिक

जीवन में बदलाव नहीं आएगा तब तक स्त्री अपने अधिकारों को नहीं पा सकती। आज स्त्री घर से बाहर निकल कर पुरुष कंधे से कंधा मिलाकर उसके समान ही घर चलाने के लिए नौकरी करने लगी है। यहाँ तक कि वह पुरुष से बड़े ओहदे तक पहुँच चुकी है, लेकिन घर पहुँचते ही उसका यह सम्मान तब धरा का धरा रह जाता है, जब उसका पति उससे पूछता है, आज आधा लेट क्यों हुई, दिन भर कहाँ रही, क्या-क्या किया अर्थात पूरी दिनचर्या शाम को घर पहुँचकर पति के समक्ष रखनी होती है। स्त्री को उसके अधिकार दिलाने के लिए पुरुष को अपनी मानसिकता बदलनी होगी, तभी स्त्री अपने अस्तित्व को समझ पाएगी, स्वाभिमान से जी पाएगी। ऐसा कतई नहीं कि स्त्री अपने स्वाभिमान की लड़ाई केवल भारत में लड़ रही है, बल्कि संपूर्ण विश्व में कमोबेश उसकी यही स्थिति है, मैं कहूँ इससे भी बदतर स्थिति है तो इसमें कोई दो राय नहीं। अमेरिका में रह रही सेंडी की चिंता भी इसी बात को लेकर है-'औरत को बनाकर रखने की आदमी की आदत जल्दी नहीं जाएगी .....स्त्रियाँ कितनी ही स्त्री-स्वातंत्र्य आंदोलन चलाएँ, वे आर्थिक रूप से स्वावलंबी हो जाएँ फिर भी वे कब बराबरी का स्थान पाएँगी, कब पुरुष उन्हें केवल शरीर के लिए नहीं, वह भी इंसान है..... उस रूप में जानेगा पहचानेगा।'(जिनी यहीं रहेगी, -७३)

कल्पना की दृष्टि से बात करें तो देखते हैं कि लेखिका ने कल्पना का अद्भुत चित्र खींचा है। इसे पढ़ने पर ऐसा लगता है कि मानो स्वयं लेखिका ने ही इन दृश्यों को भोगा हो, जिसे उन्होंने जिनी के माध्यम से व्यक्त किया है-'उसे लगा वह राबर्ट हाथ पकड़े उड़ी जा रही है... आकाश में ऊपर-ऊपर... तारों के बहुत पास... शीतल मंद बयार के हल्के झोंकों में उसकी आँखें झपक रही थीं..... आसपास रूई के बादल... उसकी पकड़ से छूटने का अहसास दिलाए बिना खिसकते जा रहे थे.....।'(जिनी यहीं रहेगी, पृष्ठ -६३)

प्रेम की परिभाषा क्या यह एक जटिल विषय है। कबीरदास जी कहते थे...

पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोई। एकै आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।।

उसके पश्चात मीरा और राधा का प्रेम आता है, जिसकी आज भी लोग मिसालें देते आ रहे हैं। इनके यहाँ केवल समर्पण ही दिखाई देता है और समर्पण भी एकतरफा। लेकिन आज प्रेम के स्वरूप में बड़ा ही क्रांतिकारी परिवर्तन दिखाई देता है। जिस प्रेम की बात लेखिका ने इस उपन्यास में उठाई है, वह प्रेम या तो शरीर के धरातल तक सीमित रह गया है या फिर आर्थिक। आज प्रेम समर्पण की भावना की पहल न तो प्रेमिका की तरफ से होती है और न ही प्रेमी की ओर से इसीलिए जिनी सैंडी से पूछती है 'क्यों? तुम तो सात साल से पीटर के साथ घूम रही थी। अच्छी तरह एक दूसरे को जानते थे। शादी सात माह चली।'(जिनी यहीं रहेगी, पृष्ठ -७३) तब सैंडी जिनी से ही प्रश्न कर बैठती है - 'प्रेमी के रूप में पुरुष और पति के रूप में पुरुष क्यों इतना अंतर है जिनी... एकदम बदल जाता है। जिनी तुझे क्या लगता है क्या अनुभव है तेरा... पुरुष आज भी डिक्टेटर बना चाहता है।' (जिनी यहीं रहेगी, पृष्ठ -७३) ऐसा प्रतीत होता है कि इन्हीं अनुभवों के चलते अंकुरित हुआ होगा 'लिव इन रिलेशन' की धारणा। तभी तो जिनी की दोस्त केथी कह उठती है-'बच्चा भी नहीं चाहिए... शादी

भी नहीं चाहिए.... क्या फर्क है ऐसे रहने में और शादी रहने में। उसने कार ले ली है। पिछले माह हम कैलिफोर्निया घूमने गए थे। आनंद आ गया.... खूब घूमे... अब वह एपार्टमेंट ले रहा है, फिर साथ रहेंगे।' (जिनी यहीं रहेगी, पृष्ठ -७४) इस प्रकार शादी के बिना साथ रहना और बच्चे पैदा करना विदेशों में आम बात हो गई है। लेखिका याद आता है कि उसने कुछ साल पहले सेन्डियेगो में 'वुमैन केयर नर्सिंग होम' में गर्भपात का विरोध करती स्त्रियों को देखा था। वह आश्चर्यचकित हो गई थी, तब वह १९८४ के अमेरिका को याद कर; तब के व आज के अमेरिका में आए हुए अंतर को महसूस करती उस समय अमेरिका में गर्भपात का कोई विरोध नहीं करता था। उस वक्त वह लाफ्यैट लुजिआना स्टेट में रह रही थी। उस समय जो लड़कियाँ समय रहते गर्भपात नहीं करा पाती थी, ऐसे नाबालिक कुँवारी माँ और उनके बच्चों को सरकारी पैसा मिलता था। इसका नतीजा हुआ, लापरवाही और दो बच्चे फिर सरकारी खर्च से गुजारा। वहाँ पर लड़कियों के गर्भपात कराने का कारण या तो वे बच्चे को पालने में सक्षम नहीं रहती थीं, या फिर कोई बच्चे की परेशानी को लेकर चिंतित दिखाई देती थीं।

आज संपूर्ण विश्व में एक नई समस्या उभर कर आ रही लोग शादी करते हैं और उनसे बच्चे भी पैदा होते हैं, लेकिन वे एक लंबे समय तक एक साथ जीवन बिता पाने में असमर्थ दिखाई दे रहे हैं अर्थात उनके बीच तलाक हो जाता है। यह स्थिति समाज में लगातार बढ़ती जा रही है। इसका कारण व्यक्ति के भीतर अतृप्त इच्छाओं का लगातार बढ़ते जाना है। आज मनुष्य के लिए इस बात को समझना आवश्यक हो गया है कि कोई भी व्यक्ति पूर्ण नहीं होता किसी व्यक्ति में कुछ अच्छाई है तो कुछ न कुछ बुराइयाँ भी अवश्य ही निकल आएँगी। अत: हमें बुराइयों की चिंता किए बगैर अच्छाइयों के साथ समझौता करके जीने का प्रयास करना चाहिए, जिसे जिनी भी स्वीकरती हुई दिखाई देती है-'हर मनुष्य में कुछ न कुछ कमजोरियाँ रहती है, चेहरे बदल लेने से कुछ नहीं होता, जॉन की कमजोरी, पीटर में नहीं दिखी तो उसे चुन लिया... उसमें कोई दूसरी निकल आती है।' (जिनी यहीं रहेगी, पृष्ठ -९५) अत: हमें छोटी-छोटी समस्याओं को लेकर नोक-झोंक करने की अपेक्षा साथ बैठकर उसका हल ढूँढ़ना चाहिए ताकि हमारा व हमारे बच्चों का भविष्य उज्ज्वल बन सके और एक स्वस्थ समाज का निर्माण किया जा सके। यदि अब भी समय रहते हमने निर्णय नहीं लिए तो इसके दुष्परिणाम हमारे आने वाली पीढ़ी में स्पष्टत: दिखाई देंगे। आज ऐसे दंपतियों के बच्चे या तो पिता के पास रहते हैं या माता के पास। उन्हें एक साथ दोनों का प्यार नहीं मिल पाता, जिसके लिए वे लगातार तड़पते रहते हैं। कभी-कभी यह भी गया है कि माता-पिता अपनी स्वतंत्रता को बनाए रखने के लिए बच्चे को अनाथ आश्रम अथवा हॉस्टल में डाल देते हैं। ऐसी स्थिति में ये बच्चे कभी-कभी इतने निराश हो जाते हैं कि आत्महत्या तक कर बैठते हैं, या अपनी पीड़ा को कम करने के लिए ड्रग्स लेने लगते अथवा अल्कोहल का अत्यधिक सेवन कर अपने गमों को भूलने का प्रयास करते हैं। जिनी इन सभी स्थितियों से भली-भाँति वाकिफ है, इसीलिए वह पढ़ लिखकर एक एसोसिएशन बनाती है, जिसमें सिंगल पेरेंट्स को आमंत्रित कर समझाती है-'बच्चों की मासूम जिंदगी में तुम बड़े लोग कैक्टस मत लगाओ, उम्र उनकी लिखने-पढ़ने, खेलने-खाने की है...

माँ-बाप के प्यार पाने की है। वे उपेक्षित से अकेले; माँ-बाप की बढ़ती दूरियाँ... घर टूटने का भय जिलाए या टूटे घरों के बाद; स्थिति से जूझते जीवन बिताने लगते हैं... तभी सिंगल पेरेंट्स अपनी नई जिंदगी शुरू करने लगते हैं तो बच्चे जाते हैं।'(जिनी यहीं रहेगी, पृष्ठ -९२) इस तरह सिंगल पेरेंट्स न ही बच्चों की उपेक्षा की कोई चिंता करते हैं और न ही उनके दिनचर्या की।

अत: जिनी चाहती है कि सभी माता-पिता अपने बच्चों की परवरिश सही तरीके से करें। उन्हें अच्छे संस्कार दें। उन्हें अपनी संस्कृति से पर अवगत कराएँ, ताकि भविष्य में वे भी अपनी जिम्मेदारियों को समझने में सक्षम हो सकें। जिनी नई पीढ़ी के संदर्भ में कहती है-'आज की पीढ़ी गैर जिम्मेदार क्यों है?-हवा पानी दूषित हो गया है क्या? वे आज चाँद व मंगल में पहुँच हैं; पर माँ-बाप के हृदय तक नहीं पहुँचना चाहते।'(जिनी यहीं रहेगी, पृष्ठ -१०४) इन्हीं स्थितियों के चलते आज वृद्धाश्रम की संख्या बढ़ती जा रही है जिसे लेकर जिनी चिंतित दिखाई देती है। वह टूटते परिवारों को संबोधित करते हुए कहती हैं-जब तुमने बच्चे को सुरक्षित भविष्य नहीं दिया... उनसे अपेक्षा क्यों रखते हो; वे तुम्हारे लिए कुछ करेंगे बुढ़ापे में... जितनी तेजी से परिवार टूट रहे हैं... उतनी ही तेजी से वृद्धाश्रम बन रहे हैं।' (जिनी यहीं रहेगी, पृष्ठ -१०४)

इतना ही नहीं जब जिनी अपने भाई डेविड और जॉन से माता-पिता की लाचारी की बात करती है और ही उन्हें अपने साथ चार-चार दिन रखने की सलाह देती है, तब वे तपाक से उत्तर दे देते हैं कि इन्हें वृद्धाश्रम छोड़ दिया जाए। यह सुन जिनी सन्न रह जाती है, और वह यह नहीं समझ पाती कि आखिर इन बच्चों और उपेक्षित बच्चों में क्या अंतर है। कुछ ही महीनों बाद पिता की मृत्यु हो जाती है और माँ अकेली पड़ जाती है। माँ की असहाय स्थिति देख फिर से अपने भाइयों के समक्ष माँ को साथ रखने का प्रस्ताव रखती है लेकिन कोई भी माँ की जिम्मेदारी लेने को तैयार नहीं होता, तब वह माँ अपने साथ ले जाने का निर्णय लेती है, लेकिन माँ यह कह कर साथ चलने को मना कर देती है कि मैं तुम्हारे पिता द्वारा बनाए इस घर से जीते जी कहीं नहीं जाऊँगी-'उसकी आँखों में सैकड़ों चेहरे घूम रहे थे... चेहरे .... चेहरे उनमें आंखें पड़ी थीं... बेबस... निरीह.... ममताभरी..... आशाभरी... बच्चों को घूरती .....असहाय अवस्था में कोई हाथ थाम ले..... फिर एक डॉक्टर से, मम्मी को मैं ले जा रही हूँ..... जिनी ने कहा..... मम्मी.....मैं घर बेच दूँगी। तुम्हारे घर में तुम्हारे साथ हमेशा रहूँगी..... तुम्हें अपना घर ही अच्छा लगता है न.....मम्मी की नन्हीं बच्ची-सी आंखें..... जिनी को देख रही थी.....।'(जिनी यहीं रहेगी, पृष्ठ -१११) यह भारतीय संस्कृति का ही परिणाम है, जो विदेश में रहते हुए भी जिनी में उसके भारतीय पिता से व भारतीय साहित्य को पढ़ने से विकसित हुआ है।

निष्कर्षत: यह उपन्यास समाज की यथार्थ स्थितियों को उकेरने में सक्षम है। भले ही यह उपन्यास अमेरिका, न्यूयार्क की स्थितियों को हमारे सामने रखता है, लेकिन कहीं न कहीं इस तरह की स्थितियाँ संपूर्ण विश्व में देखने को मिल रही हैं। यहाँ तक कि इस संस्कृति ने भारत में भी अपने पाँव पसारने प्रारंभ कर दिए हैं। लेखिका की चिंता है कि समय रहते यदि इन स्थितियों पर विचार न

किया गया तो आगे हमें भी अपने बच्चों से कोई अपेक्षा रखने का अधिकार नहीं रह जाएगा। आज यदि बच्चे अपनी जिम्मेदारियों से मुँह मोड़ते दिखाई दे रहे हैं तो कहीं न कहीं उनकी परवरिश में हमने कोताही की  इस बात को हमें स्वीकार करने में जरा भी संकोच नहीं करना चाहिए। भाषा की दृष्टि से यह उपन्यास सरल और सहज है। लेखिका ने इस उपन्यास में जिन ज्वलंत समस्याओं को उठाया है, वे समसामयिक परिवेश को यथार्थ रूप से अभिव्यक्त करने में सक्षम है। भाव और संवेदना की दृष्टि से उपन्यास अपना एक विशेष स्थान रखता है।

अध्यक्ष, हिंदी विभाग
रामनारायण रुइया स्वायत्त महाविद्याल
माटुंगा, मुंबई-४०००१९.

# सुरंग के बाहर : पुरुष वर्चस्ववाद का प्रतिकार

**राजेश गौड़**

सुरंग के बाहर उपन्यास स्त्री-विमर्श पर आधारित एक सामाजिक उपन्यास है। इस उपन्यास को मूलत: स्त्री-विमर्श का उपन्यास कहना अतिशयोक्ति होगा परन्तु सामाजिक मुद्दों से सरोकार रखते हुए स्त्री-विमर्श की बात करना इस उपन्यास की मुख्य विशेषता है। इस उपन्यास में लेखिका कमलेश बख्शी जी ने जहाँ एक ओर सामाजिक यथार्थ, संवेदनशीलता, पुरुष वर्चस्ववादी सत्ता, नारी के प्रति पुरुष की मनोवृत्ति, पारिवारिक जीवन का बच्चों पर पड़ने वाला प्रभाव, प्रकृति का प्रतीकात्मक चित्रण, पाश्चात्य संस्कृति का जन-जीवन पर प्रभाव, भारतीय संस्कृति के प्रति चिंतनशील नजरिया, तथाकथित आधुनिकता, स्त्री और पुरुष में होने वाले भेद-भाव, धार्मिक कुरीतियों पर प्रहार, को चित्रित किया है, वहीं दूसरी ओर स्त्री मन एवं स्त्री चरित्र के सूक्ष्म से सूक्ष्म बिन्दुओं को भी उजागर किया है।

सन १९८१ में इस पुस्तक का प्रकाशन हुआ था। औपचारिक रूप से स्त्री-विमर्श की शुरुआत भी इसी दौर में मानी जाती है। स्त्री-विमर्श की शैशवावस्था में विमर्श के विविध आयामों का अद्भुत चित्रण इस उपन्यास की मुख्य विशेषता है। इसमें उठाए गए प्रश्न आज भी प्रासंगिक हैं। इसके पात्र एक तरफ समझौते के तहत नारकीय जीवन यापन को मजबूर हैं तो दूसरी तरफ परिवर्तन की आशा में अन्याय का विरोध करते हैं और कड़े निर्णय लेकर अलग जीवन यापन करना उचित समझते हैं। लेखिका हिंसात्मक प्रतिकार को नकारते हुए कहती है जघन्य अनाचार का विरोध करते हुए आत्मरक्षा में खून कर दिया परन्तु इंसान से पिंड छुड़ाने का यह तरीका गलत है। किसी को न सह पाने में वहाँ से हट जाना बेहतर है।

बख्शी जी का मानना है कि पुरुष वर्चस्ववादी समाज को पैदा करने में भी स्त्री की ही भूमिका रही है और आज के इस समय में स्त्री की दयनीय स्थिति का कारण भी वह स्वयं है। पुरुषों में पुरुषत्व का भाव, शक्ति तथा अहं को उत्पन्न करने वाली भी स्त्री ही है, जिसने अपने स्त्री सुलभ स्वभाव के कारण उनका विरोध नहीं किया बल्कि उन्हें प्रोत्साहन दिया और धीरे-धीरे पुरुषों के अधीन होते हुए दासी बन गई। यह अधीनता इस हद तक पहुँच गई कि पुरुष ने स्त्री को वासना, भोग-विलास और मनोरंजन का साधन समझ लिया। स्त्री की यह स्थिति एक दशक या वर्ष की परिणति नहीं है। इस स्थिति तक पहुँचने में स्त्री को कई सहस्त्र वर्ष लगे हैं और इनसे मुक्ति पाने में भी लंबा समय लगेगा। स्त्रियों को अपनी स्थिति को सुधारने के लिए आश्यक है कि वे आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हो ताकि जीवन की कठिन परिस्थितियों में वे आत्महत्या करने की जगह स्वतंत्र रूप से जीवन यापन हेतु

निर्णय ले सकें। पुरुष मानसिकता और मनोवृत्ति का चित्रण कर वे कहती हैं समाज में पुरुष चाहे जिस किसी भी स्थान पर क्यों न हो, उसके लिए स्त्री एक शरीर या मनोरंजन का सामान मात्र है। पुरुष मानसिकता ने विभिन्न प्रतिस्पर्धाओं या आयोजनों के माध्यम से भी स्त्री तन को ही उघाड़ना चाहा है और विरोध की स्थिति में यह कह कर पल्ला झाड़ लिया है कि हम कोई जबरदस्ती नहीं करते। स्त्री मनोरंजन का साधन अधिक रही और गृह लक्ष्मी कम। इस उपन्यास में पितृ सत्तात्माक पुरुष वर्चस्ववादी समाज के प्रति एक तीखी और तल्ख प्रतिक्रिया है जो मनुवादी विचारधारा का खुलकर विरोध करती है। समाज में बने पुरुष और स्त्रियों के लिए अलग-अलग नियम स्त्रियों को गुलाम बनाने के साधन मात्र हैं, जिन्हें पुरुष अपने सुविधानुसार परिवर्तन कर सकता है परन्तु स्त्रियों के लिए ये रूढ़ हैं। ये मनुवादी सोच ही है जिसने स्त्रियों को गुलाम बना रखा है। इस संदर्भ में उपन्यास की ये पंक्तियाँ बिल्कुल सार्थक हैं-समाज ने स्त्री और पुरुष के लिए अलग नियम क्यों बनाये? पुरुष सत्तात्मक समाज में बंधन केवल स्त्री के लिए। क्या पुरुष विधुर या विवाहित होने की तख्ती गले में टांगता है? फिर नारी को क्यों विवश किया जाये... उसके श्रृंगार को सधवा घोषित किया जाये ... उन्हें पोंछ विधवा बना दिया जाये। इन झूठे ढकोसलों को नारी की जिन्दगी से निकाल फेंकना चाहिए। श्रृंगार नारी की प्रकृति है, वह तो सजेगी ... बिन्दी भी लगानी नहीं छोड़नी चाहिए।

लेखिका ने जहाँ एक तरफ समानता का कथित अधिकार देने वाले ढोंगी समाज का मूल्यांकन किया है, तो दूसरी ओर पुरुष वर्ग को वास्तविक रूप में समानता का अधिकार प्रदान करने के लिए वर्चस्ववादी विचारधारा को त्यागकर अपने अहं से मुक्त होने की सलाह भी दी है, जिसकी संभावना उन्हें कम ही लगती है। वे कहती हैं कि पुरुष कभी भी स्त्री को समानता के स्थान पर स्वीकार नहीं कर पायेगा। चाहे कानून अधिकार ही क्यों न दे दे। स्त्री के विभिन्न रूप एवं स्थिति के प्रति पुरुष वर्ग की मानसिकता सदैव से अलग-अलग रही है और यह तब तक बरकरार रहेगी जब तक वह अहं मुक्त न हो जाए। इस असमंजस के बीच वे स्त्री की स्थिति में होने वाले सामाजिक परिवर्तनों को भी स्वीकार करती हैं तथा उन पर गहराई से विचार करती हैं। धर्म की आड़ में स्त्रियों के होनेवाले शोषण का उल्लेख भी किया है। धार्मिक रीति-रिवाज और परम्परा की आड़ में स्त्रियों को कैसे वर्गीकृत और शोषित किया जाता है? कैसे उन्हें एक संपदा के रूप में सामाजिक जामा पहनाया जाता है? इन प्रश्नों पर गंभीरतापूर्वक विचार किया गया है। स्त्री को सामाजिक आधार पर पंगु बनाने का जो षड़यंत्र सदियों से चला आ रहा है और जिसे वे अपनी नियति मानकर स्वीकार करती रहीं हैं, उसके प्रति उन्हें जागरूक करना और नवीन चेतना के साथ मनुवादी संस्कृति, षड़यंत्रों तथा पितृ सत्तात्मक पुरुष वर्चस्ववादी समाज के बंधन को तोड़ने की प्रखर चेतना इस उपन्यास की विशेषताओं में से एक है। इस संदर्भ में वे कहती हैं - धर्म के ठेकेदारों ने ढकोसलों का ऐसा मलवा समाज की आंखों पर चढ़ा दिया है कि व्यक्ति सत्य को पहचान ही नहीं पाता। धर्म ने केवल पुरुषों को सत्ता दी। पत्नी की मृत्यु के बाद वह कंधा नहीं देता क्योंकि उसे विवाह करना है। विधुर के सगे-संबंधी जोर डालने लगते हैं दसवें दिन ही भैया बच्चों की सोचो कैसे चलेगा? बच्चे नहीं तो भैया नाम चलाने वाला तो चाहिए। घर घरनी बिन भूत का डेरा। लड़कियों के रिश्ते कुँवारी लड़कियों के ... आने लगते हैं। पुरुष

के लिए कोई बंधन नहीं। उधर स्त्री के साथ विपरीत। उम्र छोटी हुई तो काला मुंह करेगी, ये क्या टिकेगी घर के अन्दर। यह नहीं कहेंगे …सुयोग्य वर ढूँढने की अनुमति दे दो। प्रौढ़ बच्चों वाली हुई तो ….बच्चों के लिए जीना पड़ेगा। कोई नहीं कहेगा बच्चों वाला विधुर इसे अपना ले। इसके भी बच्चे पल जायेंगे। उसका भी भविष्य सुरक्षित हो जाएगा। पुरुष सत्तात्मक समाज ने स्त्री को इतना विवश क्यों किया -स्त्री जीवन पर केन्द्रित यह उपन्यास महिलाओं के जीवन की गहराई से पड़ताल करता है तथा सामाजिक ढकोसलों के साथ-साथ उनके जीवन की विसंगतियों को भी उजागर करता है। स्त्री जीवन की विसंगतियों को समझने के लिए ये पंक्तियाँ बिल्कुल सार्थक हैं - समाज ने स्त्री के लिए एक ही पथ निर्धारित किया है, दो देहरी के बीच। पितृ-गृह देहरी से डोली गई ससुराल की देहरी में प्रवेश की बस यही इति है स्त्री जीवन की। ससुराल की देहरी से अरथी ही निकलनी चाहिए और वह जीती-जागती निकल आई। बस संकरी पगडंडी पर आगे बढ़ना ही उसकी नियति है-एक ओर ऊँची चोटी दूसरी ओर खाई मुँह बाये खड़ी है। वह इस पगडंडी से हटना चाहती है-खाई में गिर जाए या-पाषाण से टकराकर टुकड़े-टुकड़े हो जाए।

सामाजिक मुद्दें हो या पारिवारिक कलह, इन विषयों पर एक सार्थक चर्चा दिखाई पड़ती है। लेखिका का मानना है कि पारिवारिक कलह का सबसे ज्यादा नुकसान बच्चों पर पड़ता है। यह कलह उनके मस्तिष्क में एक गहरी छाप छोड़ता है जो उनके जीवन का आधार बनता है। मां-बाप के जीवन का असर भी संतान पर दिखता है। वे कहती हैं -'मां-बाप के टूटे संबंधों को बच्चे ही भोगते हैं। न उन्हें सुरक्षित वर्तमान मिलता है न भविष्य-फूल से कोमल अबोध-मां-बाप से कहीं अधिक पिसते हैं।…. अपनी बुद्धि की दुहाई देनेवाला यह कभी न समझ सका कि वह आने वाली पीढ़ी के सुखमय जीवन में काँटे बो रहा है। अनजाने ही बेटियों के मन में पुरुष के प्रति घृणा के बीज बो रहा है, बेटों को अपना-सा बनाने में सहायक हो रहा है।

उपन्यास के केन्द्र में भले ही स्वेता (नारी) हो परन्तु लेखिका ने पुरुष तथा स्त्री संबंधों को केवल एकांकी नजरिये से नहीं देखा बल्कि उसे निष्पक्ष और तटस्थ रहते हुए उद्घाटित किया है। एक ओर स्त्री-विमर्श की बात करते हुए स्त्रियों की वर्तमान और भविष्य के प्रति चेतना प्रदान की है तो दूसरी ओर तथाकथित आधुनिकता की आड़ में स्त्री द्वारा पुरुष पर थोपे गई थोथी विचारधारा और खोखली मानसिकता का भी सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है। आधुनिकता के नाम पर पुरुष को प्रताड़ित करना तथा त्यागने का जिक्र उपन्यास को एकांगी नजरिये से बचाता है। स्त्री की इस विकृत मानसिकता का कारण पाश्चात्य रहन-सहन तथा पाश्चात्य संस्कृति को ठहराया गया है। समाज में पाश्चात्य संस्कृति की दखल और भारतीय संस्कृति से युवा वर्ग का विमुख होना लेखिका के लिए चिंता का विषय है जिसे वे अपने उपन्यास में सारगर्भित तरीके से उठाती हैं। समाज में हो रहे सांस्कृतिक अतिक्रमण पर प्रकाश डालते हुए वे कहती हैं कि वह महत्वाकांक्षी, ग्लैमर में डूबी उसी जीवन को उपलब्धि मानने वाली थी। क्लब, पाश्चात्य संगीत, पाश्चात्य नृत्य, इसमें उसका भी कसूर नहीं। बंबई शहर में कान्वेंट स्कूल में पढ़ने वाली लड़कियां अपनी मातृभाषा, देशभाषा, वेशभूषा सभी बिसार देती हैं। पाश्चात्य संस्कृति बुरी तरह घुसपैठ कर हमारी संस्कृति को घर से निकाल अपना

आधिपत्य जमा रही है। माता-पिता ही उस संस्कृति को श्रेष्ठ कह देते हैं तो बच्चों का भला क्या कसूर। घरों में रिकॉर्ड बजेंगे-धुनें बजेंगी, तो पाश्चात्य…

उपन्यास के कथानक की चर्चा करें तो कहानी का प्रारंभ और अंत दोनों ही मातृत्व के बोध के साथ होता है परन्तु संपूर्ण कहानी के केन्द्र में स्वेता है, जो इस उपन्यास की प्रमुख पात्र है। स्वेता के माध्यम से लेखिका ने स्त्री जगत तथा पुरुष मानसिकता दोनों का चित्रण करते हुए सामाजिक कुरीतियों, परम्पराओं एवं धार्मिक आडंबर पर प्रहार करने का प्रयास किया है। उपन्यास में आये पात्रों का चरित्र-चित्रण करने में लेखिका सफल रही हैं, कुछ ऐसे पात्रों का भी उल्लेख किया गया है, जिन्हें मुख्य पात्रों के चरित्र को उजागर करने के लिए उपयोग में लाया गया है। ऐसे पात्रों का कहानी से सीधा सरोकार नहीं है। देश-काल, परिस्थितियों और सामाजिक स्थिति के चित्रण में लेखिका ने विशेष ध्यान दिया है। चाहे वो देहरादून की पहाड़ियाँ हों या मुंबई का गिरगांव चौपाटी या पूना का क्षेत्र, सबका चित्रण सजीव रूप में किया है। देश-काल का वर्णन पढ़ते समय पाठक को ऐसा महसूस होता है कि वो स्वयं उन जगहों पर यात्रा कर रहा है। भाषा शैली की बात करें तो चित्रात्मक एवं प्रतीकात्मक भाषा शैली का प्रयोग भरपूर मात्रा में किया गया है। इसी संदर्भ में -'पतझड़ में नीम और शहतूत के पत्तों से आँगन भर जाता। मौसम की उदासी से वह भी उदास हो जाता। सींक की झाड़ू से पत्ते बुहारता तो-खड़खड़ाते पत्ते रोते से लगते-तब पूछ बैठता, मां पत्ते भी रोते हैं क्या? रोयेंगे नहीं, अपने जन्मदाता से बिछड़कर, निर्जीव जो हो गए। उसे अपनी खोखली हंसी ….और पत्तों के खड़खड़ में कोई अन्तर नहीं लगा। समाज में व्याप्त कुरीतियों, आडंबरों, पाखंडों और शोषण का विरोध करने के लिए उन्होंने प्रखर और धारदार भाषा का प्रयोग तो किया है, परन्तु वे मयार्दा की बाँध कहीं भी नहीं लाँघती है। संयम और संतुलन का ध्यान रखते हुए इस कृति का निर्माण किया है। प्रकृति के साथ अपने मनोभाव को जोड़कर परिस्थितियों का वर्णन अपने आप में अद्‌भूत है।

इस प्रकार हम सुरंग के बाहर उपन्यास को समग्रता में देखें तो पाते हैं कि यह उपन्यास स्त्री विमर्श पर आधारित एक सामाजिक उपन्यास है, जिसमें सामाजिक यथार्थ, स्त्री-विमर्श के विविध आयाम, जीवन के प्रति सकारात्मक नजरिया, तथाकथित आधुनिकता के प्रति रोष, पाश्चात्य संस्कृति का विरोध, भारतीय संस्कृति के प्रति लगाव और चिंतनशील नजरिया, धार्मिक पाखंडों तथा कुरीतियों का तीव्र विरोध, लैंगिक भेद-भाव का विरोध, प्रतीकात्मक एवं चित्रात्मक लेखन शैली का प्रयोग और स्थानीयता का बोध उपलब्ध है। यह उपन्यास अपने समय की एक महत्वपूर्ण रचना है जो आज भी प्रसांगिक है।

द्वारा श्री आलोकेश्वर गुप्ता
फ्लैट नं. एफ-३
श्रीअंगन को ऑप हाउसिंग सोसायटी लि.
डीसी-२४४, स्ट्रीट नं. ३४२
एक्शन एरिया १ डी, निकट टाउन, कोलकाता-७००१५६

# 'अंतहीन भटकन' ही है जीवन

**डॉ. अनिल कुमार सिंह**

मुंबई के साहित्य जगत में कमलेश बख्शी, चिरपरिचित नाम हैं और यहाँ के साहित्यिक माहौल में डूबते-उतरते, उनके जीवन के चार से ज्यादा दशक हो चुके हैं। इस लंबे कालखंड में उन्होंने हिंदी गद्य को कितना समृद्ध किया है, यह तथ्य अब चर्चा का मोहताज नहीं है। अकादमिक स्वीकार और गहन साहित्यिक लोकप्रियता ने उन्हें भरपूर स्वीकार्यता दी। उनके लगभग बीस से अधिक कहानी संग्रह, उपन्यास, यात्रा वृत्तांत, लेख-संग्रह आदि प्रकाशित हैं। सिंधी, उर्दू, जर्मन आदि कई देशी-विदेशी भाषाओं में उनकी कहानियाँ अनुदित हैं। यह सब उनकी साहित्यिक विशिष्टता को दर्शित करनेवाले आयाम हैं। लगभग साढ़े तीन दशक पहले सन १९८२ में, उनका एक उपन्यास प्रकाशित हुआ था 'अंतहीन भटकन'। इसमें जिंदगी के अनायास चरित्र और टेढ़ी-मेढ़ी भटकन की सीधी-सादी चित्रकारी स्पष्ट कथ्य और प्रवाहमयी भाषा के साथ ज्ञनीताङ्ख के सानिध्य में चलते-चलते हम एक पूरी पीढ़ी के जीवन संघर्ष को जी लेते हैं। उपन्यास के केंद्र में मुंबई महानगर में बसे एक संयुक्त परिवार की दास्तान है जिसमें जीवन के सहज उतार-चढ़ाव अभिव्यक्त हुए हैं। इसमें कथा सूत्र किसी अतिरंजना से निर्मित नहीं हुआ है, रोजमर्रा का दु:ख-दैन्य इसके रचनात्मक संवेदन का आधार बना है।

किसी भी सृजन के पीछे एक सुव्यवस्थित वैचारिक सरणी होती है। सृजन समस्या अनायास प्रकट हो सकती है परंतु उसका मूल्यांकन कृतिकार के अपने वैचारिक मानदण्डों से ही फलित होता है, इसी से और कृतिकार दोनों विशिष्ट बनते हैं। इस उपन्यास के संदर्भ में भी यह सवाल उपस्थित है कि इसकी संवेदन-दीप्ति क्या है? इसका केंद्र बिंदु क्या है? इसमें मध्यवर्ग है, निम्न जाति है, स्त्री-संघर्ष है, यह सब है परंतु कुछ भी विशिष्ट के रूप में नहीं आया है बल्कि ये इस उपन्यास में जीवन की समेकित समीक्षा में अंग रूप में उपस्थित हैं। खुद का माहौल और परिवेश किसी भी साहित्यकार के लेखन का सबसे बड़ा प्रेरणास्रोत बनता है और प्रामाणिक सामग्री भी। इस उपन्यास में कहन के लिए जिस तरह से विचारों, घटनाओं और प्रसंगों का गुंफन हुआ वह जिया सच है या फिर अत्यंत निकटतम। दरअसल यह सबर्व्स की कथा है अगर इस शब्द को दूधनाथ सिंह के विशिष्ट प्रयोग के रूप में देखा जाय तो। अपने साक्षात्कार पुस्तक 'कहासुनी' में दूधनाथ जी कहते हैं, ''सबर्व्स'' मैंने एक खास निजी अर्थ में लिया है। मतलब जहाँ में दोगलापन प्रवेश न कर गया हो। जिसमें 'एनार्की' न हो। छद्म फैशन परस्ती को ही जहाँ जीने का पर्याय न मान लिया गया हो। जहाँ अपने निजत्व की पहचान बाकी हो। जहाँ सोचने-समझने की फुर्सत हो। जहाँ आदमी सुखपूर्वक एक झूठा जीवन जीते

हुए खत्म न हो गया जहाँ आलस्य में लेटने का अवकाश हो, जब आप चीजों और स्थितियों पर अखबारी ढंग से सोचने के बजाए, उन पर गहरी निगाह डाल सकें। जहाँ लालचों और समझौतों की गुंजाइश कम हो। ऐसी जगहों को मैं 'सबर्व्स' कहता हूँ। जाहिर है यह सबर्व्स, महानगर, कस्बे या गाँव कहीं हो सकता है। 'अंतहीन भटकन' में निजत्व की खंगाल है, इसमें झूठे नहीं सच्चे जीवन की जद्दोजहद है, इसमें स्थितियों पर गहरी निगाह है, इसमें समझौते नहीं होकर सब कुछ सीधी रेखा में है इसीलिए यह 'सबर्व्स' कथा है।

हिंदी उपन्यास के इतिहास में उन्नीसवीं शताब्दी का छठा और दशक नए विचारों, विद्रोहों और प्रयोगशीलता से भरा रहा है। चले आ रहे सामाजिक राजनीतिक और मानवीय मूल्य नए-नए अर्थों का प्रकटीकरण कर रहे थे या साहित्यकार परिवेशगत बदलावों के अनुरूप नए-नए अर्थों की तलाश और सृजनात्मक अभिव्यक्ति कर रहे थे परंतु आठवाँ दशक आते-आते नवीनता एवं प्रयोगशीलता का थमने लगा तथा संवेदनशील लोगों की नजर कुछ और भी जरूरी मुद्दों पर ठहरने लगी। साहित्यकारों ने भी इन मुद्दों को अपने-अपने नजरिये से चिह्नित किया। किसी की दृष्टि कहीं रमी, किसी की कहीं। इन्हीं में से एक कमलेश जी भी थीं, जिनकी दृष्टि सामाजिक मुद्दों और सरोकारों पर स्थिर हुई और इनमें भी आपसी रिश्तों, संबंधों की पड़ताल, बदलते समय के मुताबिक बदलती आस्थाएँ, परिवार एवं विवाह जैसी संस्थाओं की प्रासंगिकता-अप्रासंगिकता, आस्था एवं अनास्था आदि जैसे प्रश्न ज्यादा मुखर रहे हैं। उनकी चिंताओं में व्यक्ति से कहीं ज्यादा समष्टि है। बदलती सोच और समय के मुताबिक सामाजिक और संस्थाओं के सकारात्मक विकास पर उनकी दृष्टि कहीं ज्यादा रमी है। मूल्यांकन का उद्देश्य दिशाहीनता से बचाव का ही रहा है।

'अंतहीन भटकन' में नायकत्व दरअसल किसी व्यक्ति नहीं बल्कि संस्था को प्राप्त है। यह समय और परिवेश के दबावों के चलते एक संयुक्त परिवार के धीरे-धीरे बिखरने दिशाहीन होते जाने तथा कुछ पात्रों द्वारा उस दिशाहीनता और बिखराव के विरुद्ध संघर्ष की अंतर्गाथा है। इस संयुक्त परिवार में कई पीढ़ियाँ एक साथ दो कमरों के घर में, अपनी-अपनी में मग्न हैं। दादा दादी, काका-काकी, मम्मी-पापा और फिर तीसरी पीढ़ी के मुकेश, रजनी, नीता, आभा, अमिता, नम्रता, विजय सभी परिवार के सदस्य अपनी भूमिकाओं में उपस्थित हैं। कसेरा (निम्न जाति) का यह परिवार गाँव में अपनी पैतृक संपत्ति बेंचकर मुंबई महानगर में अपनी जड़ें पैठा चुका है और सभी अपनी-अपनी वय के अनुसार इस मध्यवर्गीय परिवार की जड़ें मजबूत करने में लगे हैं। अपवादरहित ढंग से मध्यमवर्गीय परिवार की सारी समस्याएँ यहाँ उपस्थित हैं। रोजी-रोटी का संघर्ष, अगली पीढ़ी के भविष्य का प्रश्न, मध्यमवर्गीय संस्कारों की जकड़न, लड़कियों के विवाह का प्रश्न, तमाम मर्यादाओं और अमर्यादाओं के बीच का मानसिक संघर्ष, परिवार के अस्तित्व का संकट सभी कुछ इस उपन्यास में प्रासंगिक होकर सामने खड़ा कथाक्रम में 'नीता' उपन्यासकार का प्रतिनिधित्व करती जान पड़ती है। उपन्यास में कई समानान्तर कथाएँ भी विविध प्रसंगों के साथ एक लक्ष्य की ओर बढ़ते दिखायी देती हैं, जैसे मुक्ता, रत्ना आदि की स्थितियाँ परिस्थितियाँ। एक संयुक्त परिवार, अपनी सारी विवशताओं और संघर्षों के साथ इस उपन्यास में अभिव्यक्ति है।

'अंतहीन भटकन' में उपन्यासकार ने कई विचारणीय समस्याओं को कथासूत्र में पिरोया है जो कि बदलते सामाजिक ढाँचे से गहरा ताल्लुक रखती है। बदलते परिवेश में समाज में श्रद्धा, परस्पर विश्वास और प्रेम, नि:स्वार्थ सेवाभाव, त्याग जैसे मूल्यों का क्षरण साफ तौर पर लक्षित किया जा सकता है। कोई समाज महान बनता है अपने लोगों से और लोग भी इन्हीं गुणों को धारण कर समाज को महानता की ओर अग्रसर करने में अपनी भूमिका का निर्वहन करते हैं।

व्यवस्था पर पड़ रहे दबाव, जो कि सामयिक बदलावों की देन है, इनके चलते मूल्यों के क्षरण की जो है, क्या उसे टोक पाना संभव है? यदि नहीं, तो ऐसे में यह प्रश्न भी ज्वलंत है कि क्या छोड़ा और क्या सहेज लिया जाए। जन-जीवन में हो रहा सांस्कृतिक परिवर्तन व्यवस्था पर बदलाव का अतिरिक्त दबाव उत्पन्न कर रहा है। आम मध्यम वर्ग इस दबाव और तनाव में ज्यादा पिस रहा है। वह अनिर्णय की स्थिति में किंकर्तव्यविमूढ़ खड़ा है। वह परंपरा को छोड़ना नहीं चाह रहा और भविष्य की वास्तविकता से मुँह चुरा रहा है। उसकी विवशताएँ ही उसे परंपरा से हटने पर मजबूर कर रही हैं। इसमें उसकी स्वाभाविक सहमति नहीं है। परिस्थितिगत दबावों के वह विवश है। उपन्यास की कई घटनाएँ इस संक्रमण को व्यक्त करती दिखायी देती हैं, जैसे-रजनी का भागकर विवाह करना। महानगरीय सभ्यता ने इस आधुनिका को यह हिम्मत दे दी परंतु उसके इस निर्णय पर पूरा परिवार किस टूटन का सामना करता है और अन्तत: उस फैसले से खुद तटस्थ कर लेता है, यह इस संक्रमण का ही प्रभाव है। उपन्यास के उत्तरार्ध में नीता का मायका उसके भाइयों अजय, विजय के मौन के कारण जिस तरह धीरे-धीरे टूटने की तरफ बढ़ रहा था, वह भी मूल्यों के क्षरण और व्यवस्था के दबाव से पैदा हुए संक्रमण की है। यहाँ परिवार के बुजुर्गों के स्वीकार-अस्वीकार का प्रश्न भी महत्वपूर्ण है। रक्त संबंधों में निजी स्वार्थों के कारण पैदा हुई दरकन भी कम महत्वपूर्ण प्रश्न नहीं है। इन सारे सवालों के साथ-साथ उपन्यास में उपन्यासकार बड़े मूक ढंग से एक और प्रश्न समानांतर लिए चलती हैं जो जीवन की उत्तरजीविता से गहरा ताल्लुक रखता है। नीता, अमिता जैसी लड़कियाँ परिवार संस्था के हित में अब दोहरी जिम्मेदारी निभाने को विवश हैं। परिस्थितियाँ उन्हें चयन अर्थात स्वीकार-अस्वीकार की स्वतंत्रता ही नहीं देतीं। दोहरा दायित्व उनकी विवशतापूर्ण जिम्मेदारी है। इस दोहरे दायित्व के कारण पैदा हुआ स्त्रियों मानसिक आत्मसंघर्ष भी, जिसे हम 'नीता' के रूप में उपन्यास में व्यक्त होता देखते हैं, एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। किस प्रकार नीता अपने मायके, ससुराल, स्वयं अपनी संतान उर्मि और अपनी नौकरी के बीच संतुलन स्थापित करने को लेकर भटकती रहती है। नौकरी और संतान के प्रति दायित्व ये ही तथ्य उसके भीतर मानसिक आघात-प्रतिघात पैदा किए रहते हैं। पारिवारिक जिम्मेदारियाँ उसे नौकरी नहीं छोड़ने देतीं तो दूसरी तरफ उर्मि को लेकर वह हमेशा एक अपराध बोध से ग्रस्त रहती है। इस तरह देखा जाए तो यह उपन्यास मध्यवर्गीय और महानगरीय जीवन में सामयिक बदलावों के फलस्वरूप हुई, विकसित एवं समस्याओं को बेहद प्रशंसनीय ढंग से हमारे सामने रखता है।

अब अगला कदम यह है कि यह उपन्यास अपने प्रसंगबोध से क्या नजरिया देता है जिसे हम साहित्यकार का धर्म भी कह सकते हैं। दरअसल साहित्य का रचाव केवल बता देने भर से संबंधित

नहीं है। विकल्प सुझाना भी अनिवार्य है, भले ही वह ढंग अप्रत्यक्ष हो। उपन्यासकार ने इस बनाव-बिगाड़ पर विविध प्रसंगों में जो रच दिया है, उसे साधा जाना भी जरूरी है। जैसे रजनी का प्रसंग, जिसके प्रत्युत्तर में उपन्यास में 'रत्ना' उपस्थित है। 'रत्ना' एक गुजराती परिवार की लड़की है जो में बह, एक मराठी लड़के से विवाह कर लेती है। ससुराल में वह विभिन्न तरीकों से अवमानना का शिकार होती है। तमाम भाषायी और सांस्कृतिक भिन्नताएँ उसके सहज जीवन के आड़े आते हैं। उसी को लक्षित कर एक जगह उपन्यास में नीता कहती है, ''हमारे देश का सामाजिक गठन ऐसा नहीं है, इसीलिए इतनी असुविधा है। हजारों वर्षों की संस्कृति टूट नहीं सकती। एक धर्म, एक बोली-इतने बड़े देश में संभव नहीं। हाँ, यदि एक प्रांत के एक बोली के अपने में ही ऊँच-नीच की भावना छोड़ जुड़ जाएँ तो कितना अच्छा हो।'' इस कथन को संभवत: समाधान तरह ही देखा जाना चाहिए। दूसरी तरफ जो परिवारों के विखंडन का प्रश्न है, वहाँ उपन्यासकार ने नीता, मुकेश, काका-काकी और अमिता के द्वारा भविष्य में एक आशा का निर्माण किया है। इसके बाद तीसरा, जो 'नीता' जैसी लड़कियों और गृहणियों के साथ जुड़ा हुआ है। नौकरी और परिवार संतान संबंधी दायित्व का द्वन्द्व, जो गहरे आत्मसंघर्ष को जन्म देता है। इस संदर्भ में उपन्यासकार का नजरिया कुछ-कुछ बहाव के साथ बहते जाने का है, जैसे भविष्य स्वयं समाधान देगा। इस बदलाव को रोक पाना संभव नहीं है, अपने-अपने तरीके से ही इसका निर्वाह हो सकेगा। जिंदगी निरंतरता में है, यही है प्रवाह के अनुरूप ढल जाना। विवशता है स्थिति और परिस्थिति की। चिरंतन है ङ्कयहङ्घ। ङ्कनीताङ्घ हो जाना नियति है।

उपन्यास का पहला शब्द आरंभ होने से पहले ही समर्पण में लिखी एक पंक्ति पर दृष्टि बैठती है-'ऐसी भटकन, जिसका कोई अंत नहीं' यह पंक्ति जैसे पूरे का मर्म सामने रख देती है। उपन्यास शुरू और समाप्त करने के बाद जब दृष्टि इस पंक्ति पर लौटती है, तो उपन्यास के सौ से ज्यादा पृष्ठ इस एक पंक्ति में आकर सिद्धि पा जाते हैं। परंपरा में सब कुछ विदीर्ण कर देने वाला ही नहीं है, बहुत कुछ ऐसा है रक्षित किया जा सकता है, सहेजा जा सकता है। अपने समय के बहुत सारे अनुत्तरित प्रश्नों का अपनी शैली में दिया गया उत्तर है ये उपन्यास। इसे स्त्री-प्रधान उपन्यास कहना इसकी आत्मा से खिलवाड़ होगा। इसमें स्त्री है, पुरुष है और सब परिवार के सांचे में अपनी-अपनी भूमिका में हैं, उसी में सार्थक हैं। यह खण्डकथा नहीं, संपूर्ण कथा है। इसमें साहित्य के वायवीय आग्रही विचार या सरणियाँ नहीं हैं। यह विशुद्ध, सहज और स्वाभाविक जीवनराग हैं। यह किसी विमर्श के सांचे में भी नहीं अटेगा। यह केवल जिंदगी की समीक्षा से ही परिभाषित हो सकेगा।

अध्यक्ष, हिंदी विभाग
सोनू भाऊ बसवंत कला व वाणिज्य महाविद्यालय,
शहापुर, जिला-ठाणे-४२१६०१.

# साहस और भक्ति का प्रतिनिधित्व करता उपन्यास : विधिचंद

**शोभा बिष्ट**

समकालीन साहित्य का क्षेत्र इतना विस्तृत परिधि लेता जा रहा है कि उसका सीमांकन करना बहुत बड़ी चुनौती बनता जा रहा है। इसी साहित्य जगत में कमलेश बख्शी का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। जिन्होंने हिंदी साहित्य को अनेक रचनाएँ प्रदान की हैं। कमलेश बख्शी ने आठ उपन्यास, दस कहानी संग्रह, दो यात्रा वृतांत आदि की रचना की है। बिधिचंद उनका एक चर्चित उपन्यास है जिसमें सरकार, कानून, प्रावधान आदि के युग में राजा महराजाओं की कहानी बड़ी रोचक जान पड़ती है। वर्तमान युग में अपने इतिहास को नई पीढ़ी तक पहुँचाने का सबसे सरल माध्यम कथा-साहित्य ही होता है। कमलेश बख्शी ने विधिचंद द्वारा बड़े आकर्षक रूप में सिक्खों के इतिहास को हमारे सम्मुख रखा है। साठ पृष्ठों की यह कथा हमें सिक्खों का इतिहास समझने में मदद करती है।

इस उपन्यास की शुरूआत गुरु अर्जुन देव के शिष्य 'बाबा अदाली' द्वारा बिधिचंद जैसे मशहूर डाकू के हृदय परिवर्तन करने से होती है। बिधिचंद पंजाब का एक डकैत था जिसके नाम से आस-पास के कई शहर भी काँपा करते थे। बिधिचंद, गुरु अर्जुन देव से मिलते ही अपने पापों का प्राश्चित करने लगता है। गुरुजी उसका साहस बढ़ाते हुए कहते हैं। ईश्वर की शरण में आये हो तो अतीत के पाप से क्षमा मिल जायेगी। संत-सेवा, भक्तों की सेवा तन-मन से करो। दूसरों की संपति लूटने की इच्छा-चोरी कर कुछ पा लेने की इच्छा - बस इन इच्छाओं का त्याग करना होगा।[१] गुरुजी के वाक्यों का ऐसा जादू होता है कि वह सिक्ख धर्म अपना लेता है। साथ ही, अपने कृत्यों की माँफी भी माँगता है।

कहानी मुगल शासक जहाँगीर के अत्याचारों का सत्यापन है। बात उस समय की है जब मुगल शासक भारत में पंजाब से होकर घुस रहे थे। इसी के चलते गुरु अर्जुन देव को अनेक संघर्षों का सामना करना पड़ा था। बादशाह जहाँगीर ने गुरु देव को लाहौर बुलाकर अनेकों शारीरिक यातनाएं दीं और मार डाला। देश और धर्म के लिए सिक्खों के पाँचवें गुरु अर्जुन देव ने अपने प्राणों की आहुति दे दी। उस समय गुरु अर्जुन देव के साथ बिधिचंद भी थे, जिन्हें अंतिम समय में गुरुजी ने पंजाब वापस भेजा और अपने पुत्र को सिक्खों का छठा गुरु घोषित कर दिया। गुरु हरगोबिंद छठे गुरु मान लिए गए। जिन्होंने अपने पिता की शहादत को जाया न जाने दिया। इसीलिए उन्होंने सिक्ख पंथ को संत वाणी के साथ-साथ वीर योद्धा भी दिए। गुरुजी अपने सैन्य संगठन का प्रयोग केवल मुगल आक्रमणों के प्रतिउत्तर में किया करते थे। उनका कहना था हम किसी से लड़ेंगे नहीं, यदि हम पर

कोई अत्याचार करेगा तो मुकाबला करेंगे। अत्याचार सहेंगे नहीं।[२]

यह कहानी गुरू हरगोबिंद के शासन काल की है। सिक्ख धर्म के मतानुसार मसंद (ऐसे व्यक्ति जो दूर शहरों और देशों से धन, अनाज, घोड़े, शस्त्र आदि गुरुजी के लिए भेंट स्वरूप एकत्रित करते थे।) बख्तमल और ताराचंद काबुल से गुरुजी के लिए बहुमूल्य भेंट लेकर आ रहे थे। जिनमें दो घोड़े भी थे जिनका नाम दिलबाग और गुलबाग था। जिनकी विशेषता बताता हुआ काबुल से आया मसंद कहता है घोड़े तुमने देखे नहीं। सवार को गीला किए बिना नदी पार कर जाते हैं। गति इतनी तीव्र है कि शक हो जाता है कि वे पैर जमीन पर रख भी रहे हैं या उड़ रहे हैं।[३] इन घोड़ों को लाहौर के शासक जहाँगीर ने पंजाब तक आते-आते अपना घोषित कर दिया। घोड़ों को वापस लाने का जिम्मा बिधिचंद पर आ गया। गुरुजी के मान को शिरोधार्य कर बिधिचंद ने सभी के सामने शपथ लेते हुए कहा जिस काम को न करने की मैंने कसम खाई थी सोच रहा हूँ मुझे माफ करना गुरुजी! तुम्हारे भक्तों द्वारा लाये घोड़े मुगलों ने छीने हैं उन्हें वापस लाउंगा। मुझे शक्ति देना वाहे गुरु।[४]

बिधिचंद प्रखर बुद्धि वाला पराक्रमी सूरवीर था ही और अब तो वह गुरुजी की भक्ति भावना के तप से पूर्ण हो चुका था। उपन्यासकार ने बीच-बीच में नई-नई चुनौतियों का वर्णन इस प्रकार किया है कि पाठक आगे की कहानी जानने के लिए उतावले हो उठते हैं। कहानी का शेष जानने की इच्छा हर पंक्ति को ध्यान से पढ़ने के लिए प्रेरित करती है। लाहौर पहुँचते ही राजमहल की सुरक्षा और सिपाहियों की पहरेदारी ने बिधिचंद को कुछ समय के लिए दुविधा में डाल दिया किंतु गुरुदेव पर उसकी श्रद्धा बढ़ती ही जा रही थी। अपने मित्र की सहायता से जल्दी ही उसने घोड़ों के रहने के स्थान और सुरक्षा का परीक्षण कर लिया था। गुरु हरगोबिंद की नीति का पालन करते हुए बिधिचंद ने घसियारे का रूप बनाकर बादशाह के दिल में जगह बना ली। वह कई दिनों तक राजमहल में घोड़ों की जी -जान से सेवा करता रहा। मुगलों को उस पर पूर्ण विश्वास हो गया था। सभी सिपाही उसके मित्र बन चुके थे। एक दिन योजना बानाकर उसने सभी सिपाहियों को शराब पिलाने की दावत दे दी। सीधे-साधे घसियारे की दावत और दावत में पिलाई जाने वाली मदिरा को सभी सैनिकों ने स्वीकार कर लिया था। सभी सैनिकों ने दावत का भरपूर मजा लिया किंतु, एक संतरी ने अपनी जिम्मेदारी(पहरा देने) वाली बात पर शराब पीने में हिचकिचाहट जाहिर की। तब उसे समझाते हुए बिधिचंद कहते हैं संतरी जी! बादशाह का किला है, बादशाह का डर कम होता है ? कोई हिम्मत कर सकता है यहाँ पहुँचने की? फिर चारों ओर देखकर बोला-यहाँ चुराने को है भी क्या-क्या कोई घोड़े चुराने आयेगा? वैसे बेफिक्र रहो। मैं तो पी नहीं रहा पहरा भी दे दूँगा-आप लोग जी भरकर पी लो याद करोगे किसी ने पिलाई थी।[५]

यह वाक्य उसे विचलित और उत्सुक करने में बड़ा कारगर हुआ है। संतरी कहानी को नया रुख देता है। अपने कार्य के प्रति निष्ठा उसे शराब पीने से रोकती है, किंतु दोस्त घसियारे की बात में आकर वह शराब पी लेता है। यह हमें सीख देता है कि अपने कार्य हमें पूर्ण श्रद्धा से करना चाहिए। कहानी की पूर्णता के लिए संतरी का मूल उद्देश्य से भटकना लेखिका की कल्पना है क्योंकि,

वर्तमान जगत इन्हीं विचारों पर चलता आ रहा है। कहानी में मानवीय संवेदना, प्राकृतिक सौंदर्य, मूक जीवों के प्रति स्नेह और आदर को बड़ी सरलता से प्रस्तुत किया गया है। गुरु को भेंट में दिलबाग मिलने पर गुरु और शिष्य दोनों प्रसन्न होते हैं। सभी सैनिक नशे में धुत बेहोश हो जाते हैं। इसी का फायदा उठा बिधिचंद दिलबाग को ले भाग जाता है। किंतु, दिलबाग को देखकर लग रहा था कि वह कमजोर पड़ने लगा है और दुखी भी है। कारण उसका अपने मित्र गुलबाग से अलग हो जाना था। यह तो प्रत्येक जीव की प्रकृति है कि वह अकेला नहीं रह सकता। हर एक को अपने समाज की आवश्यकता होती है। लेखिका द्वारा ऐसी अनेक संवेदनाओं का उल्लेख कहानी में किया गया है। ऐसी स्थितियों को पाठक के सामने नाटकीय रूप में प्रस्तुत करना लेखिका की विशेषता रही है। दिलबाग को गुलबाग से मिलाने का निर्णय ले बिधिचंद फिर लाहौर की ओर निकल पड़ा। इस बार वह ज्योतिषी का भेष बनाकर बादशाह के दरबार में पहुँचा और परिचय देते हुए बोला बादशाह सलामत मैं, जंगल में रहता हूँ। लोग मुझे खोजी गनक कहते हैं। मैं चाँद-तारों की गणित जानता हूँ। रास्ता बता दूँगा कि किधर चोर गया है। कुछ लोग मुझसे दुश्मनी बांधे हैं -मैं अकेला हूँ। उनसे बचने के लिए मुझे भटकते रहना पड़ता है।[६]

अहंकार में चूर बादशाह उसे नहीं पहचाना सका। इसी का फायदा उठाकर बिधिचंद दूसरे घोड़े को भी ले भाग खड़ा हुआ। योजना पूरी हो जाने पर ललकारते हुए मुगल शासक से कहता है सुनो बादशाह...काबुल के सिक्ख श्रद्धा-भक्ति से ये घोड़े गुरु हर गोबिंद के लिये लाये थे। तुम्हारे सिपाहियों ने छीन लिये थे।७ अब वह दोनों घोड़ों को मिलाने के लिए पंजाब की ओर निकल पड़ा। दोनों घोड़े आपस में मिलकर बहुत खुश हुए। आज एक-दूसरे के साथ वह बड़े स्वस्थ नजर आ रहे थे। सभी सिक्खों ने बिधिचंद के साहस को सहारा और उन्हें बधाई दी। मुगल बादशाह अपने इस अपमान पर बहुत क्रोधित हुआ और उसने युद्ध की घोषणा कर दी। गुरु हरगोबिंद सिंह भी बड़ी वीरता से अपनी सेना लेकर गुल्सार नामक तालाब के किनारे आ खड़े हुए। युद्ध में गुरुजी की जीत हुई किंतु, वीर घोड़ा गुलबाग मारा गया। कुछ दिनों बाद इसी युद्ध में दिलबाग भी वीर गति को प्राप्त हो गया। दो घोड़ों का जोड़ा सिक्ख इतिहास में अमर हो गया। यह कहानी इतिहास का वह पन्ना है जिसके बाद गुरुग्रंथ साहिब की तीसरी प्रति बिधिचंद द्वारा लिखी गई। कहानी का अंत बिधिचंद की मृत्यु के सत्यापन के रूप में हुई है। अंतिम समय में बिधिचंद ने बंगाल आदि में सिक्ख धर्म का प्रचार किया। जहाँ उन्हें सुंदर शाह नामक साधु ने अपना परम मित्र बना लिया। बिधिचंद ने अपनी आखिरी साँसें भी सुंदरशाह के साथ लीं। अनेक उप कथाओं के साथ बिधिचंद की कहानी समाप्त हो जाती है।

पाँच अंशों में विभाजित यह कथा बाल-उपन्यास की श्रेणी में आती है। कहानी को सहज और सरल रीति से प्रस्तुत करना लेखिका की विशेषता रही है। छोटी-छोटी कहानियों द्वारा नई-नई सीखों को देना लेखिका का मुख्य उद्देश्य रहा है। जैसे बिधिचंद का प्रायश्चित करना, शराब पीने के दुष्परिणाम, पशु प्रेम, मित्रता आदि-आदि। आज के आधुनिक युग में जहाँ साहित्य ने अपना विषय बाजार, स्त्री, व्यक्तिवाद, बेरोजगारी, मनोविश्लेषणवाद और भ्रष्टाचार आदि को बना लिया है, वहीं

यह कहानी काल्पनिक सी लगती है। बिधिचंद द्वारा प्रतिदिन घास के ढेर में लाए गए पत्थर को रात के समय नदी में डालना काल्पनिक ही है। किंतु, यह बिधिचंद की दूरदर्शिता का प्रदर्शन करता है। वहीं कहानी की सबसे बड़ी विशेषता भी लेखक की कल्पनाशीलता ही होती है। बिधिचंद सिक्ख धर्म का इतिहास है। यह कहानी जहाँ हमें अहिंसात्मक युद्ध की प्रेरणा देती है, वहीं सिक्ख गुरुओं के सदाचार और सदव्यवहार का भी ज्ञान कराती है।

## संदर्भ ग्रंथ सूची


१.बिधिचंद, कमलेश बक्शी, पृष्ठ-११
२.बिधिचंद, कमलेश बक्शी, पृष्ठ-१२
३.बिधिचंद, कमलेश बक्शी, पृष्ठ-१५
४.बिधिचंद, कमलेश बक्शी, पृष्ठ-१७
५. बिधिचंद, कमलेश बक्शी, पृष्ठ-३३
६. बिधिचंद, कमलेश बक्शी, पृष्ठ-४९
७. बिधिचंद, कमलेश बक्शी, पृष्ठ-५२



शोध-छात्रा
रामनिरंजन झुनझुनवाला
स्वायत्त महाविद्यालय,
घाटकोपर (प.), मुंबई

# नारी जीवन की पीड़ा, संघर्ष और विद्रोह का बहुविध संसार रचती कहानियाँ

**डॉ. सतीश पांडेय**

बख्शी हिंदी की उन महिला कहानीकारों में से हैं जिनकी कहानियों में आज के सामाजिक-पारिवारिक जीवन के खुरदरे यथार्थ का टटकापन सहज-सरल भाषा में प्रकट हुआ है। अब तक इनके लगभग दस कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं लेकिन अधिकांश कहानियों में नारी जीवन की पीड़ा, अभिशाप, आशा-निराशा, विश्वास और  के अनछुए पहलू उजागर हुए हैं। इनके अधिकांश चरित्र वास्तविक जीवनानुभव की उपज हैं, जिनके माध्यम से इन्होंने समय गत संघर्षों को सामाजिक संदर्भों में उभारने का प्रयास किया है। इसीलिए इनकी कहानियों में महानगरीय जीवन से जुड़े नारी चरित्र बहुतायत में हैं। इनमें कुछ तो हारे-सहमे, विवश और  दिखाई देते हैं तो कुछ व्यवस्था की चोट खाये, जख्मी, विद्रोही, संघर्षरत और आत्मनिर्भर। कुछ तो पुरुष प्रधान व्यवस्था में बार-बार प्रताड़ित-अपमानित होते हुए भी अपने अधिकारों के प्रति सजग-सचेत तथा आर्थिक आत्मनिर्भरता के कारण अपने  की रक्षा में समर्थ हैं। रूढ़ सामाजिक परंपराओं में जकड़ी होने के कारण अंतर्द्वंद्व की शिकार हैं। इस प्रकार इनकी कहानियों में स्त्री-जीवन का एक बहुविध संसार रचा गया है। 'काँठ हुई औरतें', 'बाढ़ हमेशा नहीं रहती', 'बच्चे नहीं दूँगी', 'अदृश्य कल्पित तीसरा', 'आखिरी बयान', 'पन्ने बोलने लगे', 'झंझावात थक गया', 'शुचिता का प्रमाण पत्र', 'सपना पूरा होगा मां', और  'जना' आदि नारी जीवन के बहु विध यथार्थ को व्यक्त करने वाली सशक्त कहानियाँ हैं।

पति-पत्नी का संबंध आपसी विश्वास पर टिका होता है। विश्वास टूटने पर रिश्ते के बीच ऐसी दीवार खड़ी हो जाती है, जिसे ढहा पाना असंभव हो जाता है। 'काँठ हुई औरतें' की विमला मीरचंदानी का  एक दिन विमला की छोटी बहन सुनीता को अकेले पाकर उसके साथ ज्यादती कर बैठता है। विमला को जब यह मालूम पड़ता है तो उनके बीच का रिश्ता चकनाचूर हो जाता है। विमला अपने पति से अलग रहने का निर्णय कर लेती है। इस घटना के बाद विमला और  का जीवन काँठ की औरत की तरह स्थिर हो जाती है लेकिन परस्पर अविश्वास उन्हें जुड़ने नहीं देता।

पारिवारिक जिम्मेदारियाँ निभाते नारी के विवाह में देरी या अविवाहित रह जाने की समस्या इनकी कहानियों में बार-बार चित्रित हुई है। इस स्थिति का प्रभाव नारी के समूचे व्यक्तित्व पर पड़ता है। 'बाढ़ हमेशा नहीं रहती' और 'तब संयोग नहीं थे' जैसी कहानियाँ इसी सच का बयान करती हैं।

'बाढ़ हमेशा नहीं रहती' की सुरेखा अपने छोटे भाई बहनों की शादी विवाह की जिम्मेदारियाँ निभाते-निभाते अपनी उम्र से अधिक प्रौढ़ लगने लगती है। सफेद बालों की चमकती कतार दिखाई देती है। ऐसे में वह विवाह की इच्छा ही मार लेती है। इच्छाओं का दमन करती और अंदर ही अंदर घुटती वह कठोर होती जाती है। बांझ धरती-सी कठोर। किसी तरह पैतालीस वर्षीय ठिगने कद वाले उपेंद्र से विवाह होता है। पर वे एक दूसरे से एडजस्ट नहीं कर पाते। उनकी गृहस्थी प्यासी धरती-सी बड़ी-बड़ी दरारों वाली बनी रहती है। ऐसे में बड़ी उम्र में बच्चे की लालसा और 'सत्य' का जन्म उनके जीवन को उमंग से भर देता है। 'तब संयोग नहीं थे' की संजना भी बड़ी उम्र तक विवाह न होने के कारण उग्र और हीन भावना की शिकार हो है लेकिन अंतत: वह अक्षय से विवाह कर उसके बच्चों में ही अपनी खुशी ढूँढती है।

माँ न बन पाने की पीड़ा कई बार जीवन के लिए अभिशाप बन जाती है। कई बार इसी कारण पति-पत्नी के संबंधों में दरार भी आ जाती है। भारतीय परिवेश में ही नहीं परिवेश के लोग भी तमाम आधुनिक संवेदनाओं के बावजूद ऐसा ही सोचते हैं। 'अदृश्य कल्पित तीसरा' की लूसी भी ऐसी ही नारी है, जो बच्चों के लिए सारा प्रयत्न करती है किंतु असफल ही रहती है। अंतत: इस प्रयास में वह पति एंथोनी रिचड्र्स का साथ नहीं खोना चाहती किसी 'अदृश्य कल्पित तीसरे' के लिए अपने दांपत्य को विषमय नहीं बनाना चाहती है।

माँ के लिए बच्चों के प्रति ममता वह धागा होता है, जो वह कभी नहीं तोड़ पाती। 'बच्चे नहीं दूँगी' की चंपा की पीड़ा दोहरी है। एक तो उसकी छोटी बहन मधु के प्रेम में देने वाले पति किशोर के कारण उसका बसा बसाया घर बर्बाद हो जाता है लेकिन इससे भी भारी संकट तब घिर आता है जब उसके दोनों जेठ उसके दोनों बेटों को गोद लेना चाहते हैं। कोई नहीं सोचता कि 'पति तो गया, बच्चों के बिना वह कैसे जियेगी-जियेगी-किसके लिए जियेगी? उसके बेजुबान बच्चों की बोली लगती है। यह नहीं सोचते कि बच्चे माँ के जीवन का सहारा ही नहीं, उसके जीने का लक्ष्य भी होते हैं। डरी-सहमी चंपा सपने में बड़बड़ाती है-'मैं बच्चे नहीं दूँगी'। (एक चेहरे की तलाश, पृष्ठ ३२-३३)

प्रथा नारी जीवन की विडंबना का एक बड़ा कारण रही है, जिस पर ढेरों कहानियाँ लिखी गई है लेकिन 'आखिरी बयान' इस मायने में अलग है कि इस कहानी की ममता दहेज-लोलुप पति और सास का न सिर्फ प्रतिकार करती है बल्कि उन्हें दंडित भी करती है। ममता का अमन निहायत ही स्वार्थी एवं धन लोलुप व्यक्ति है, जो सीधे-सीधे दहेज तो नहीं लेता लेकिन जमीन खरीदने के नाम पर उसका पूरा वेतन हड़प लेता है। इतना ही नहीं पत्नी और बेटी नीलू की जिम्मेदारी ससुराल वालों पर डाल देता है। इससे ममता क्षुब्ध हो जाती है। अंतत: नौकरी छोड़कर अपनी ससुराल में रहने का निर्णय लेती है। अमन को यह पसंद नहीं आता तो वह नीलू के 'अपनी बेटी ना होने' का लांछन उस पर लगाकर उन्हें जलाकर मारने का प्रयास करता है। जलती हुई ममता अमन को कस कर पकड़ लेती है और चिल्ला उठती कि 'तुम बचकर नहीं जा सकते' दोनों आग में झुलसकर मर जाते हैं। दहेज

की यातना से पीड़ित लड़कियों पर हो रहे अत्याचार का बयान करती यह कहानी नारी के विद्रोह और संघर्ष की भी सूचक है।

दहेज की तरह तलाक भी कई बार पुरुषों के खोखले अहम् का होता है। यपन्ने बोलने लगेङ्ख की श्यामा तलाक की यही पीड़ा भोगती है। उसका पति नपुंसक है किंतु अपनी नपुंसकता छिपाने और सामाजिक छवि बनाए रखने के लिए वह वस्तु की तरह उसे दूसरों के पास भेजना चाहता है। शराफत का झूठा मुखौटा लगाए पति के घर को छोड़कर चली आती है लेकिन उसे तलाक भी इस शर्त पर मिलता है कि पति की नपुंसकता वाली बात किसी से न कहेगी। ऐसी श्यामा आत्मनिर्भर होने के प्रयास में जब अध्यापकी करने लगती है तो सहयोगी शिक्षिकाएँ उसके तलाकशुदा होने का मजाक उड़ाती हैं। पुरुष प्रधान समाज से सफलतापूर्वक चुकी श्यामा ऐसी स्त्रियों की क्रूरता का भी सटीक जवाब देती है- 'मुझे आप सब ने शक्तिहीन कर दिया है। तुम सभी अपने क्रूर तरीकों से रोजाना मुझे अपमानित कर अपना मनोरंजन करती हो।' (एक चेहरे की तलाश, पृष्ठ -५२)

यह कहानी वस्तुत: स्त्रियों के प्रति स्त्रियों की क्रूरता प्रश्न पर एक नए तरह के स्त्री विमर्श की माँग करती है। स्त्री के स्त्री विरोधी होने की यही सच्चाई 'एक चेहरे की तलाश' कहानी में भी चित्रत हुई है। इस कहानी की रमा बेटी को जन्म देने के अपराध में सास की यातनाओं के कारण मानसिक रोगी बन है। इतना ही नहीं, उसकी इस विक्षिप्तावस्था में ही उसकी सास उसे मुंबई की ट्रेन पर अकेले बिठा देती है। बेटे-बेटी में अंतर मानने वाला यह समाज स्त्री के साथ ही पक्षपात करता है। 'झंझावात थम गया' की स्वप्ना के माध्यम से कहानीकार ने एक विचारणीय प्रश्न उठाया कि 'लड़की जिस घर में जन्मी-पली, विवाह के बाद उस घर की क्यों नहीं रह जाती? जिस हक से बहू-बेटा रहते हैं, लड़की क्यों नहीं रह सकती? माँ का घर बेटी के लिए पराई दहलीज कैसे बन जाती है? (एक चेहरे की तलाश, पृष्ठ- १२३)

अमेरिका काम करने वाले परिचित परिवार के लड़के से विवाह कर छली जाने वाली स्वप्ना अपने माता-पिता के पास लौट आती है और नौकरी कर आत्मनिर्भर बनती है लेकिन मायके में न सिर्फ उसे अपनी भाभी के ताने सुनने पड़ते हैं बल्कि बेटी रेशमा को भी टूटे परिवार के ऐसे की तरह ट्रीट किया जाता है, जिसे काउंसलिंग की जरूरत हो। जिस आत्मसम्मान के साथ जीने की इच्छा लिए स्वप्ना मायके आती है, वे सारी इच्छाएँ आत्मनिर्भरता के बावजूद चकनाचूर हो जाती हैं। उसे लगने लगता है कि अपनी कैंसर ग्रस्त माँ की इच्छा पूरी करने के लिए उससे करने वाले पति द्वारा वह भले ही छली गई हो लेकिन सास-ससुर उसे बेटी की तरह सम्मान देते हैं। पति भी अपनी गलती मान कर उससे नई जिंदगी शुरू करने का अनुरोध कर चुका है। ऐसे में स्वप्ना का अपनी ससुराल लौटने का निर्णय इसी ओर संकेत है कि समाज में स्त्री का आत्मसम्मान मायके में नहीं बल्कि ससुराल में ही सुरक्षित रह सकता है।

नारी की यौन शुचिता का सवाल आज भी पुरुषों को अग्नि परीक्षा लेने का अधिकार सहज ही दे देता है लेकिन कमलेश बख्शी की 'शुचिता का प्रमाण-पत्र' की जानकी पुरुष वर्ग के इस को

सीधे चुनौती देती है। वह पति रामदेव जाधव के आरोपों का शिकार बनती है। रामदेव जाधव उसे पत्र लिखकर सूचित मात्र करता है कि 'यह बच्चा मेरा नहीं है। इसे मायके से लाई हो तभी चट मँगनी पट विवाह कर दिया।' (एक चेहरे की तलाश, पृष्ठ - १३५)

के कठघरे में खड़ी आज की जानकी पहले की सीता के दर्द की नई व्याख्या करती है। उसके अनुसार 'राम ने अपने को महान कहलाने के लिए किसी के उलाहने मात्र से गर्भवती पत्नी को जंगल में छुड़वा दिया था। पत्नी पर अविश्वास रहा होगा, समाज तो बहाना मात्र था।' (वही, पृष्ठ- १३५)

इसीलिए वह पति के आरोपों का जवाब दिए बिना बेटे का नाम 'निर्भय जानकी पवार' रखती है। उसका मानना है कि स्त्री को प्रताड़ित करने के लिए पुरुष हजार कारण ढूँढ लेता है। इसीलिए वहाँ डी. एन. ए. कराने से भी इंकार करती है क्योंकि यह भी को निर्दोष साबित करने के लिए आधुनिक अग्निपरीक्षा ही है। औरत कितनी बार पुरुष के संदेह के घेरे को तोड़े और क्यों? वह सीता का धरती में समाना एक प्रकार से आत्महत्या मानती है और वह आत्महत्या करने के बदले सिर उठाकर जीना चाहती है।

दूसरी पत्नी होने पीड़ा और अनमेल विवाह की विडंबना 'तुम' और 'उखड़ा वृक्ष धरती से जुड़ा' जैसी कहानियों में व्यक्त हुई है। 'तुम' की शीलू दूसरी पत्नी के रूप में विवाह करके सिर्फ इसलिए लाई जाती है क्योंकि पहली पत्नी से कोई संतान नहीं हो सकती। शीलू यह सब कुछ स्वीकार करती है क्योंकि उसे संतोष होता है कि बच्चे उसकी आँखों के सामने तो फिर भी उसे यह टीसता रहता है कि क्या कभी बच्चे उसे मातृ पद देंगे। 'उखड़ा वृक्ष धरती से जुदा' की प्रतिभा का विवाह भी एक बिगड़े शराबी व्यक्ति से इसलिए किया जाता है कि शायद शादी के बाद वह सुधर जाए किंतु ऐसा होता नहीं है। वह और बिगड़ जाता है। रोज की मारपीट से ऊबकर एक दिन प्रतिभा सब कुछ छोड़ कर मायके आ जाती है। लेखिका उसको पुनर्विवाह की ओर प्रेरित कर एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है। ऐसा ही सबल चरित्र 'भोगा हुआ यथार्थ' कहानी में दिखाई देता है। ये वे चरित्र हैं जिनके लेखिका ने नारी के सबल रूप को दर्शाया है।

पति-पत्नी के आपसी संबंधों में आने वाले तनाव या अलगाव का सीधा प्रभाव बच्चों की मन:स्थिति पर होता है। इनकी 'वापसी', 'सपना पूरा होगा माँ' और 'अंतर का मोड़' जैसी कहानियाँ ऐसी ही स्थितियों की अलग-अलग अनुभूतियों को व्यक्त करती 'वापसी' की सैंडी को अपनी मम्मी की मि. जैक्सन से निकटता अच्छी नहीं लगती। उनके विवाह के बाद मिस्टर जैक्सन को वह डैडी नहीं मान पाती। फिर सौतेले भाई जॉन के होने पर माँ का स्नेह भी बँटता नजर आता है। इससे वह मम्मी से भी कतराने लगती है। एक वह कह देती है कि मम्मी उसकी जिंदगी में दखल ना दें। परीक्षा के बाद वह बाबा के पास जाने का निश्चय करती है। वहाँ जाने पर सौतेली माँ और भाई बहन से उपेक्षित ही नहीं अपमानित भी होने लगती है। उसे सौतेली माँ के दुर्व्यवहार सहने से अच्छा लगता है कि वह माँ के पास लौट जाए। उसकी 'वापसी' तलाक से प्रभावित बच्चों की मन:स्थिति को बखूबी उजागर करती है।

लिविंग रिलेशनशिप आधुनिक समाज में आधुनिकता और स्वतंत्रता से जीनेवालों की उपज है लेकिन कई बार विवशता में भी स्त्री-पुरुष साथ रहने लगते थे। ऐसे संबंधों से उपजी संतानों को जिस सामाजिक घृणा एवं प्रश्नात्मकता से देखा जाता है, उसे 'सपना पूरा होगा माँ' कहानी में उभारा गया है।

अनमेल विवाह और पति द्वारा दूसरों से अवैध संबंध रखने को बाध्य की जाने वाली श्यामली की माँ किसी एक के साथ बिन ब्याही रहना उचित समझती श्यामली ऐसे ही अवैध संबंधों से उपजी संतान है। वह ऐसे बच्चों की दुविधा को चुभते प्रश्नों के रूप में एक ज्वलंत सामाजिक समस्या की तरह उठाती है- 'तुम्हें ऐसा नहीं लगता, माँ बाप को ऐसा कुछ नहीं करना चाहिए, जिससे बच्चे शर्मनाक प्रश्नों से ही नहीं, आँखों इशारों से, व्यवहार से बने चक्रव्यूह में घिर जाएँ। गुनाहगार की तरह मेरी आँखें झुक जाती हैं। (वही, पृष्ठ -६१) श्यामली उस पुरुष प्रधान समाज को भी कठघरे में खड़ा करती है-जिसमें उसकी माँ के पास आने वालों की शराफत पर वहाँ आने से कोई दाग नहीं लगता। उनके बाल बच्चों को कटघरे में खड़ा नहीं होना पड़ता। पड़ोसी उनसे आँख नहीं चुराते। (वही, पृष्ठ -१६२) श्यामली अपनी माँ के दर्द को भी समझती है कि हालात ने उसे इस दलदल में धकेला होगा। लेकिन वह स्वयं उस दलदल में नहीं फँसना चाहती। उसे लगता कि पढ़ कर आत्मनिर्भर हो नई राह खोल सकते हैं।

इसी तरह 'अंतर का मोड़' कहानी उस माँ की चिंता को व्यक्त करती है जो स्वयं के वेश्यावृत्ति में धँसे होने के बावजूद अपने बेटे को उस माहौल से निकालना चाहती है क्योंकि ऐसा न करने पर वह औरों की तरह नशीली का धंधा या दलाली करेगा।

महानगरीय जीवन का एक सच वहाँ की झुग्गी-झोपड़ियों में रहने वालों की गरीबी, आर्थिक अभाव और जीवन संघर्ष भी है। इनकी कई कहानियों में इस जीवन के अलग-अलग पहलू उजागर हुए हैं। 'जना' और 'मैं नहीं पीती प्रेत पीता है' ऐसी ही कहानियाँ हैं। 'मैं नहीं पीती प्रेत पीता है' की सुमन और उसका भाई बचपन में ही अपनी माँ के साथ घरों का बर्तन धोने, खाना बनाने और कारें धोने जैसे काम करने लगते हैं। उसके पिता कुछ नहीं करते बल्कि शराब पीने के लिए उनसे ही पैसे लेते हैं। माँ के बारे लड़का सोचता है कि 'दोहरी तिहरी जिम्मेदारी उठाती हाड़ तोड़ काम करती औरत की कोई कदर नहीं है। गरीब के घर में। (उखड़ा वृक्ष धरती से जुदा, पृष्ठ -३०) माँ उसे पढ़ाना चाहती है लेकिन वह अपनी जिम्मेदारी खुद उठाने के लिए गाड़ियाँ धोता है। वह मानता है कि 'गरीब पैदा ही जवान होते हैं। होश आते ही अपने आप को कोल्हू के बैल की तरह जुता पाते हैं। यपति को शराब पीने से रोकने वाली उसकी माँ अंधविश्वास वश पति की मृत्यु के बाद उसके भूत से बचने के लिए स्वयं शराब पीना शुरू कर देती है और लगता है कि वह नहीं, उसके पति का प्रेत पीता है।

शराब पीना इन झोपड़पट्टी वासियों में आम बात है। 'जना' कहानी का अनंत ऐसी ही जहरीली शराब पीने का शिकार होकर मर जाता है। उसकी माँ शांति जो अपनी ससुराल वालों से सताए जाने

के बाद इस झोपड़पट्टी आई थी और स्वयं कमाकर अपने बच्चे को पाल लेने का साहस किया था, वह भी शराब की लत का शिकार हो जाती है। इसी लत के कारण वह अपनी सगी बहन जना से ईर्ष्या करने लगती है और बेटे अनंत के मरने पर मिले सरकारी मुआवजे के पैसों शराब पीने और लॉटरी का टिकट खरीदने में उड़ाने लगती है। उसका इतना नैतिक पतन हो जाता है कि वह बेटे की मृत्यु को लॉटरी लगने जैसा मानती है। इसके विपरीत घर-घर काम करने वाली उसकी सगी बहन जना का चरित्र बेहद संवेदनशील है। नि:संतान होने के कारण वह के बच्चे अनंत को इस तरह पालती-पोसती है कि अनंत उसे ही अपनी असली माँ समझता है। अनंत का अंतिम क्रिया कर्म वह उधार के पैसे लेकर करती है। यहाँ तक कि ईर्ष्या रखने वाली शांति के मरने पर भी वह बिलखती दौड़ती परेशान होती है क्योंकि शांति ने उस को बच्चा देकर बहुत बड़ा सुख दिया था। उस सुख के आगे सब दुख छोटे थे। (वही, पृष्ठ - २६)

बूढ़ों की परिवार में उपेक्षा एक बेहद संवेदनशील विषय है जिसे 'सब तेरा है मेरा कुछ नाही' में इन्होंने बहुओं द्वारा उपेक्षित दो वृद्धाओं मुल्लो और छुहन के माध्यम उभारा है लेकिन इस समस्या का एक दूसरा रूप उन परिवारों में उभर रहा है जिनके बच्चे अमेरिका या अन्य देशों में जा बसते हैं और बूढ़े माँ बाप यहाँ उनके लिए तरसते रहते हैं। इनकी 'तुम हो सुधा', 'यही जीवन है', तथा 'काला पानी' जैसी कहानियाँ इस दृष्टि उल्लेखनीय हैं। 'तुम हो सुधा' की सुधा और उसकी माँ वैधव्य झेलते हुए अपने बच्चों को अमेरिका भेजती हैं। वे वहीं बस जाते हैं और बार-बार फोन पर उनको अमेरिका आने और 'जब तक दिल लगे,रहने' की बात कहते हैं। सुधा को यह बात कचोटती है कि वे यह नहीं कहते कि 'यहीं रहना होगा, अकेली क्यों रहो। 'उसे बच्चों का घर बेचने का सुझाव भी नहीं भाता क्योंकि उस घर ने संकट के समय में पाला है। उसकी एक-एक ईंट से स्मृतियाँ जुड़ी हैं। 'यही जीवन है' की मेरी और जॉन भी अमेरिका रहने वाले बच्चों द्वारा है एवं पोते-पोती देखने को तरस जाते हैं। उन्हें क्रिसमस पर बच्चों के कार्ड और फोन का इंतजार रहता है। उनकी जिजीविषा ही है कि वे अकेले न्यू ईयर मनाने जाते हैं और दो बच्चों को एक दिन के लिए ग्रैंडचिल्ड्रन बनाने की सोचते हैं। मन नहीं लगता वे घर लौट आते हैं। दो कार्ड आया देखकर उसे फायर प्लेस की मुंडेर पर रख देते हैं। फोन आने पर जॉन हेलो-हेलो कह जानबूझकर फोन रख देता है और अकेले दोनों न्यू ईयर प्रोग्राम टी.वी. पर देखने लगते हैं। वे स्वीकार करते हैं कि अब उनका ययही जीवन

इसी तरह 'काला पानी' की माँ बहू-बेटे के निमंत्रण पर न्यूयॉर्क जाती है लेकिन वहाँ जाकर पता चलता है कि बहू सुधा के पूरे दिन थे। इसीलिए उन्होंने बुलाया था। वहाँ घर की सारी जिम्मेदारियाँ माँ पर आ जाती हैं। वह दिन-रात एकाकीपन से लड़ते काले पानी की सजा भोगती कैदी भाँति छटपटाती है। अंतत: वह शीतल को पत्र लिखकर बुलाने का अनुरोध करती है। इस तरह जो माँ-बाप अमेरिका चले जाते हैं, वे वहाँ कैदी की तरह काला पानी की सजा भोगते अनुभव करते हैं।

इनकी कुछ कहानियाँ चरित्र प्रधान भी है। जैसे 'गुदामी' प्रसाद जी की 'गुंडा' कहानी याद दिलाती है तो 'सूबेदार बग्गा सिंह एक लड़ाकू, देश प्रेमी सिपाही की कथा है। इसी तरह कुछ अन्य

विषयों पर भी इन्होंने कई कहानियाँ लिखी है लेकिन उनमें कथागत घनत्व उतना नहीं है। 'दूसरा जन्म' कहानी में गुजरात में आए भूकंप की त्रासदी झेल रहे लोगों का वर्णन यह कहानी बिल्डिंग के मलबे के नीचे दबे होकर भी एक चमत्कार की तरह बच जाने वाले हिमांशु और हिमानी के जीवित निकाले जाने का आँखों देखा हाल-सी है। इतनी संवेदनशील विषय पर लिखी गई होने के बावजूद यह एक विवरण सी अधिक प्रतीत होती है।

सांप्रदायिकता और देश पर लिखी इनकी दो कहानियाँ अवश्य महत्वपूर्ण लगती हैं, 'यादों का बगूला' तथा 'नहर का पानी लाल था'। यादों का बगूला डॉ रहीम के पापा द्वारा अपनी माली के बेटे धीरज की प्रतिभा पहचान कर उसकी पढ़ाई के लिए सहायता संबंधी है, जो सांप्रदायिक समरसता का सूचक है। सांप्रदायिक के समय वही धीरज डॉ. रहीम के मम्मी पापा को अपने घर सुरक्षित ले आता है और डॉक्टर रहीम को भी अपनी बहन गुड़िया के पति के साथ जाने की हिदायत देता है। इस सांप्रदायिक सद्भाव के बावजूद यह कहानी मुस्लिम परिवारों के उस भय को उजागर करती जो दंगों के समाचार सुनकर एक ही मोहल्ले में रहना सुरक्षित मानते हैं। 'नहर का पानी लाल था' देश के विभाजन के समय हुए सांप्रदायिक दंगों पर आधारित कहानी है तब सरहद के पार जो हो रहा था वही यहाँ भी दुहराया जा रहा था। मुसलमान घरों को खोज-खोज बेगुनाह लोगों को मौत के घाट उतार दिया जाता था। नहर का पानी लाल हो गया था। नफरत सबकी आँखों में, चेहरों पर और दिलों में भी थी। ऐसी में शमीम ने अपने बेटे सलीम के साथ छिपकर अपनी जान बचाने की कोशिश की। फिर लंगड़े साबिर ने आवारा की गिद्ध नजरों से उसे बचाया। अब दस वर्षों में वह डरी-सहमी नहीं बल्कि आत्मविश्वास से भरी और किसी भी चुनौती से टकराने वाली बन गई थी।

इस तरह कमलेश बख्शी की कहानियों का वस्तु विस्तार व्यापक एवं वैविध्य पूर्ण है। इन्होंने भारतीय परिवेश से लेकर पश्चिमी देशों विशेष तौर अमेरिकी जीवन का वर्णन अपनी कहानियों में बखूबी किया है लेकिन इनकी कहानियों के केंद्र में नारी जीवन ही है। निम्न वर्गीय स्त्रियों की छटपटाहट हो या उनका संघर्ष अथवा मध्यवर्गीय नारी जीवन की विशेषताएँ, सामाजिक अंतर्विरोध और आत्मनिर्भरता की जद्दोजहद हो, वे बेहद संवेदनशीलता के साथ नारी जीवन जुड़े प्रश्नों को उभारती हैं। उनके अधिकांश नारी चरित्र यथार्थ के धरातल पर सारी विडंबना झेलते हुए भी स्वावलंबी, संघर्षशील, दृढ़ और निर्णय लेने की क्षमता से समृद्ध हैं। इन कहानियों की एक और विशेषता है सहज सरल भाषा में कहानीपन और उसकी पठनीयता को बनाए रखना जो इन्हें बना देती है।

अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
के.जे. सोमैया कला व वाणिज्य महाविद्यालय
विद्याविहार, मुंबई।

# व्यक्तिगत एवं सामाजिक समस्याओं को उकेरती पंजाबी कहानियाँ

**डॉ. मनप्रीत कौर**

'बे गड्डी चढ़ गई' कमलेश बख्शी जी की पंजाबी कहानियों का संग्रह है। उन्हीं के शब्दों में दा पीड़ा ने लिखण दी शुरुआत कीती सी।' (पृ. ९) घर कुत्ते की मौत और फिर सवा साल के भाई की असमय मृत्यु ने उन्हें दर्द का एहसास करवाया जो उनकी लेखनी ने कागजो पर उतार दिया। उनके अनुभव अनुभूत अभिव्यक्ति के रूप में कहानी के आकार में ढल गए।

कमलेश बख्शी के ही शब्दों में -आस पास दिस रहे दे रहे) परिवेश विच कोई विशेष घटना जा विशेष परिस्थितियाँ नाल पीड़त जिंदगीआं देखा ता मेरे मन गहिरी उदासी भर दिंदीआने, फिर कलम चलदी है-कहानी बण जादी है। लंबी घटना होने ता नावल शुरु हो जादा है। नित (रोज) दे देखे चरित्तर ही पात्तर (पात्र) बण जांदे ने। (वे चढ़ गई पृष्ठ १०)

संवेदना के धरातल पर किसी भी रचना का जितना अधिक आज के साथ सम्बद्ध होगा उसकी रचना उतनी ही सशक्त और प्रासंगिक होगी। पहले संवेदना से वेदना जागृत होती थी परंतु आज वेदना से संवेदना जगती है। कहानी संवेदना का संग्रह है जो सूक्ष्माति भावों को आत्मसात करती है। संवेदना व्यक्ति की चेतनानुसार है जो आत्मपीड़ा या परपीड़ा को कभी आत्मसात करती है और कभी त्याग देती है। कमलेश बख्शी की कहानियाँ संवेदना के धरातल पर पाठक वर्ग से एकाकार हो जाती है। पात्रों के साथ पाठक भी उठता बैठता सोता जागता है। सुख में हँसता और दु:ख में रोता उनकी समस्याएँ पाठक को झकझोरती हैं, सोचने पर विवश करती हैं। पंजाबी भाषा की मिठास भावों को सटीक अभिव्यक्ति और रिश्तों की गरिमा 'बे गड्डी चढ़ गई' में वर्णित है। १४ वर्ष की उम्र में बेबे का विवाह होता है। पति इंग्लैण्ड जाते हैं और बैरिस्टर बन कर लौटते हैं। उनका एक बेटा और एक बेटी होती है। एक विधवा का केस लड़ते हुए बैरिस्टर साहिब को उससे प्रेम हो जाता है और वे उससे शादी कर लेते हैं। बेबे हवेली छोड़ कर हवेली के पीछे गाय-मैंस का कमरा साफ कर है और सारे घर को संभालती है।

तीन बच्चों के जन्म के बाद जब सोहणी मर जाती है तो बेबे उसके बच्चों को अपने बच्चों की तरह पालती है। विभाजन के बाद भारत में शरणार्थी बन कर आते हैं। बच्चों का विवाह करते हैं। सभी अपने जीवन में सेटल जाते हैं। बेबे जीवन के अंतिम पाँच वर्ष सोहणी के बेटे के साथ रहती हैं।

इस तरह बेबे ने दु:ख-दर्द, बेइज्जती का जहर बिना मुंह कौड़ा (कड़वा) किए पिया और होंठो

पर हँसी रखी। बच्चों ने कहा-भाइया जी सोहणी ऊपर मिल गई होवेगी-हुण क्यों सुपने विच आऊणगे 'नहीं वे ने काणीए जल्दी आ जा। एथे मेरी सेवा चंगी नहीं हो रही। मैं वी किहा (कहा) बिस्तर बन (बाघ) के बैठी हाँ। टिकट भेज दिऊ, गड्डी चढ़ आवांगी।'

यहाँ रिश्ते मृत्यु के बाद भी खत्म नहीं होते। जीते जी ही नहीं मरने के बाद भी रिश्ते निभाए जाते हैं। के बाद परिवारजनों में उसका अक्स दिखाई देता है। संवेदना से जुड़ा व्यक्ति सदैव परिवार से जुड़ा रहता है-ङ्खजीवन ऐसा जीओ की शरीर मर जाए पर व्यक्ति न मरे। लोक कहि रहे सन-ओस (उस) दा अंत किथे होइआ? बेबे ने किन्ने लोका बिच आपणा अंश छडिआ (छोड़ा) है। पंज फुला दी हँसी बेबे वरगी (जैसी), ओस दा नक (नाक) ओस दे बुल (होंठ), ओस दी चाल, ओस दा सहिज सरल सुभाऊ (स्वभाव) (बे गड्डी चढ़ गई, पृ. ३९)

'बे गड्डी चढ़ गई' में स्त्री सम्मानपूर्वक जीना चाहती है। उनका मानना है कि जिंदगी लंबी होने की अपेक्षा स्वावलंबी चाहिए। उतना समय ही जीना अच्छा है जब तक यह पता नहीं लगता कि कब दिन हुआ और कब रात एक-एक पल काटना बहुत मुश्किल है। बेबे यही माँगती है कि किसे दे मुथाज (किसी पर निर्भर) ना बणाई, चलदी फिरदी तू लै जाई।'' (बे गड्डी चढ़ गई, पृ.

ऐसी ही एक स्वाभिमानी पात्र है भाबो। लखपति बेटे की ८५ साल की माँ चौथी मंजिल के कोने वाले फ्लैट में पिछले ३० साल से अकेली रह रही है। वह वर्तमान में जीती है। ''मैं अपने घर सुखी हां, रूखी खावां, सुकी खावां अपमान तो कोई नहीं करदा। भावों कभी भविष्य की चिंता नहीं की। उसे कभी डर नहीं लगा कि रात को कोई चोर आ जाएगा। (भाबो, पृ. २३)

पड़ोसी भाबो को माँ समान मानती है। उसका इकलौता बेटा दो किलोमीटर दूर दुकान पर आता है परंतु माँ से मिलने नहीं आता क्योंकि चार मंजिल चढ़ नहीं दूसरी ओर मानो किसी का सहारा लेकर धीरे-धीरे फुटपाथ पर किसी का सहारा लेते हुए जाती है और उसका चेहरा देख निहाल हो जाती है।

नौकर आकर घर की जरूरतों का सामान दे जाता है। अब नौकर दो-तीन महीने बाद आता है तो स्वामिभाव किसी तरह उतरती चढ़ती अपना उठवा लाती है। उसके मन में कोई मलाल नहीं है। पहले घर में सबकी खैरियत पूछती है। पौते का नामकरण हो तो घर में ही बधाई गा लेती है। उसे अपने बड़े परिवार पर गर्व है-''सब्जी वाले ने पूछा अकेली हो भाबो? तां तुसी भड़क गए। मैं बड्डे परिवार हां अकेली कैसे? पोत्रे-दोत्रै बहुत वड्डा परिवार है मेरा। इथे बाहिगुरु है, आसा दे पिता ने, ओहना दी आत्मा इथे ही है। चेहरे ते चमक सी। (भाबो, पृ. २३)

आज समस्या यह है कि इतना बड़ा परिवार होते हुए भी बजुर्ग अकेले हैं। बेटा माँ को अलग फ्लैट में के साथ रखकर अपने फर्ज की पूर्ति मानता है। खाना भी समय पर नहीं भेजते न ही दिन प्रतिदिन की जरूरत की चीजें देते हैं। माँ जो सामान वर्षों संभालती है, वे उसे एक एक कर बेच देते हैं। दादा की फोटो एक तरफ फेंक देते हैं। एक पीढ़ी लगाव दूसरी पीढ़ी का बोझ बन जाता है। माँ जिन

रिश्तों को सारी उम्र संभालती है, बेटा और उसका परिवार उसे तार-तार कर देते हैं।

विदेशों में बसे बच्चों के स्वार्थ एवं माता-पिता की मजबूरी का वर्णन 'काला पाणी' कहानी में मिलता है। विदेश में घर का काम करने लिए कोई नहीं मिलता। इसलिए बेटा बूढ़ी माँ को विदेश बुला लेता है। माँ की बेबसी और लाचारी के साथ-साथ बेटे की बेरुखी का वर्णन देखिए-''माँ चाह कर भी बेटे से बात नहीं कर सकती। मुकेश साढ़े चार बजे घर आ जाता और सुधा छः बजे घर पहुँचती। आकर पेपर पढ़ता, टी. वी. देखता, माँ बात करना चाहती तो चुप रहने का इशारा करता। खबरें खत्म होते ही सुधा आ जाती रोटी पकाती और फिर बच्चों को सुलाने चली जाती। भरे पूरे परिवार में माँ अकेली हो गई। बच्चों से भी वह बात नहीं कर सकती। उनकी समस्या भाषा की है। ''वडा (बड़ा) पोतरा ते पोतरी इंग्लिश तो इलावा कुझ (कुछ) नहीं सी वे रहना (इनको) नू सुनाऊण लई किनीआ कहानियाँ ने पर भावी ना सुणा पाई। (काला पाणी, पृ. ५९)

माँ बच्चों को हिंदी सिखाने की बात करती तो उसे दो टूक उत्तर मिलता-''माँ एह पैदा होए ते एथों दे नागरिक हन, एहना ने तो इंग्लिश ही बोलती है ना, पहला उसी (हम) एहना नाल हिंदी बिच ही गल किसी पर एहना दे दोस्त एहना दी हिंदी इंग्लिश मिक्स बोली सुण के हंसदे सी। (काला पाणी, पृ. ५९)

क्या बिडम्बना है, माँ को बच्चों देखभाल के लिए बुलाते है पर उसके और बच्चों के बीच में संवाद स्थापित नहीं होता। इतना ही नहीं जब घर आए मेहमानों के प्रति माँ प्रेम व्यक्त करती है तो उसे ऐसा करने से रोका जाता है कि यहाँ किसी से बार-बार खाने के लिए पूछने का रिवाज है।

बेटा बहू जानते हैं कि माँ वापिस जाना चाहती है परंतु, अनजान बने रहते हैं। दूसरे बेटे और बेटी से भी पत्र व्यवहार नहीं होता। उसे कहा जाता है कि ङमाँ कि मन उदास हो गया? माँ बड़ा पैसा लगदा है आऊण जाण च जेकर सस्ता हुंदा ता सारे हर साल जगदे। कोई नहींज जांदा है तां तिन चार साल बाद। फिर सारे सुख ता हैन एक आपणे बचिआ च बैठी है एथे। कोई परेशानी मैनू ते दिए नहीं एथे।' (काला पाणी, पृ. ६२) यह सुनकर वह निरुत्तर हो वह समझ जाती है कि, 'दिन-रात अकेलेपन लड़ दिया पानी दी सजा भोगदी कैदी हो गई हाँ बड़ी छटपटाहट हुंदी।' अपने स्वार्थ में बच्चे इतने अंधे हो जाते है कि माँ की उदासी देखते ही नहीं है या यूं कहें कि न समझने का दिखावा करते हैं।

'दीवार विच चिणी इट' में कठोर हृदय पिता के निर्णय से नष्ट होते परिवार की कहानी है। तरुण शादी के बाद फिल्म देखकर देर रात घर लौटता है। पत्नी भी जेवर पहन कर साथ जाती है। शहर में गहने लूटने की वारदातों के कारण पिता रात देर से आने को मना करते हैं तो बहू-बेटा दिल्ली चले जाते और लिख देते है कि यहाँ नौकरी मिल गई है। यहीं रहेंगे।

छोटा बेटा पवन नाटक निर्देशक था। जो पिता को पसंद नहीं था। पवन आफिस जाना स्वीकार करता है किंतु पिता ऑफिस में उसे गाली देते हैं तो उसे बर्दाश्त नहीं होता इसलिए पुनः स्टुडियों में

टाईपिस्ट का करता है। माँ पिता को कहती है- 'तुहाडा कठोर स्वभाव बच्चे दा भविख (भविष्य) अंधकारमय कर देगा।' (पृ. १४०)

माँ के बीमार होने पर पवन पुन: पिता के साथ काम करता है परंतु पिता का स्वभाव नहीं बदलता और पवन अंदर ही अंदर टूटता रहता है। तीन वर्ष बाद माँ मृत्यु हो जाती है। पवन पुन: फिल्मों में काम करने जाता है परंतु बीते तीन सालों की भरपाई नहीं होती वह असफल हो जाता है। पिता घर, दुकान, जेवर बेटी के नाम कर देते हैं। बड़ा भाई घर दुकान बेचकर पत्नी के नाम लिए प्लॉट में कोठी बना लेता और वहां स्कूल खोलता है कि बहन के लिए बनाया है। स्वपना छोटे भाई के साथ रहना चाहती है। एक दिन भाभी से गहने मांगती है तो भाभी थोड़े से गहने लौटाते हुए कहती है कि उसकी पढ़ाई में लग गए जब तक स्वप्ना समझती है कि उसके साथ हुआ है तब तक बहुत देर हो जाती है। जीवन में संघर्ष करते हुए पवन की मृत्यु हो जाती है। स्वप्ना फैसला करती है कि वह दिल्ली छोड़ देगी।

छोटे बेटे के प्रति पिता का इतना रोष कि समझ ही नहीं सकते कि बेटी उसके साथ ही खुश रहेगी। बड़े बेटे की सारी गलतियाँ माफ कर छोटी बच्ची का भविष्य ही दाँव पर लगा देते हैं। बना बनाया घर और सामान बिक जाता है और छोटा बेघर हो प्राण त्याग देता है।

ङ्कआश्वस्तङ्घ ऐसी माँ की कहानी है जो मंद बुद्धि बेटे को समाज में उचित सम्माननीय स्थान के लिए सभी रिश्तेदारों से संबंध तोड़ लेती है। बेटी रीटा को पढ़ने होस्टल भेज देती है। एक दिन थामस पढ़ने की जिद् करता है। बहन की किताबें छीन कर बाल पकड़ता है। माँ गुस्से में थॉमस को थप्पड़ मार देती है। १५ वर्ष का थॉमस यद्यपि मानसिक रूप ७ वर्ष का था, उसने माँ का हाथ मजबूती से पकड़ लिया और दूसरा उसे मारने के लिए उठाया। वह डर गई और चिल्लाई 'हाथ छोड़ दे थॉमस'। थॉमस मासूम बच्चे की तरह डर कर दीवार से लग गया।

थॉमस का मानसिक विकास मंदगति से हो रहा था इसलिए और रिश्तेदार उसे दयनीय दृष्टि से देख कर मुंह बनाते थे। पीटर ने तो उसे नकार दिया था और सबसे कहता था उसकी एक ही बेटी है। थॉमस को पीटर के कहने पर भी माँ ने चिल्ड्रन होम नहीं भेजा। उसका तर्क था कि यीसू ने सानू इस बच्चे नू देण लई चुणिआ है, सानु धीरज नाल आपणा कम (काम) पूरा करना चाहिदा है। (पृ. ६६)

थॉमस स्पेशल स्कूल में पढ़ता है। थॉमस के व्यवहार में धीरे-धीरे परिवर्तन दिखाई देता है। वह संवेदनशील और कलाकार बन जाता है। वह अच्छी-अच्छी पेंटिंग और ग्रीटिंग कार्ड बनाता है जो लगते हैं। माँ थॉमस की पेंटिंग की एग्जीबिशन लगाने के सपने देखती है और उसके भविष्य के प्रति आश्वस्त हो जाती है। माँ बेटे के रिश्ते की गरिमा एवं बेटे का भविष्य बनाने में माँ के सहयोग का सटीक वर्णन है। मंदबुद्धि बच्चे को समाज अस्वीकार करता है, उसे समझा जाता है किंतु बख्शी जी ने उसका समाधान प्रस्तुत किया है।

एक माँ समाज का विरोध एवं उपेक्षा तो सह लेती है किंतु घर में पति की बेरुखी, खीझ और

अपमान सहन करना अत्यंत कठिन है। बख्शी जी कहती हैं कि स्कूल आत्म विश्वास बढ़ाते हैं। विशेष बच्चों को चाहिए दया नहीं। जिनके बच्चे मानसिक रूप से अपंग होते हैं उसे संभालने की शक्ति परमात्मा स्वयं माता-पिता को देता है। समाज की बेरुखी अवहेलना सह कर अडिग रहनेवाली माँ घर में पति की बेरुखी से टूट जाती है।

बहनों के रिश्ते की गहराई को 'सभ तेरा है मेरा कुझ नहीं' में दर्शाया गया है। माता निकलने से मुल्लों की आँखें चली जाती हैं। उसकी निस्संतान बहन छुट्टन अपने पति से उसका विवाह करवा देती है और उनके बच्चों को पालती है। बहू के कड़वे शब्द सुनकर मुल्लो घर से बाहर निकल जाती है। उसे ढूँढ़ कर घर लाते हैं और छुट्टन मुल्लों को समझाती है कि क्रोधित न हुआ कर दुआ मंगिआ (माँगा) कर साड़ी (हमारी) बगिआ बवधदी (बढ़ती) फुलदी रहे। आगे कहती है-अच्छाई याद रख, बुराई नू नदी विच वहा (बहा) दें। वैसे इंसान नू दूसरे दी अच्छाई ही याद रखनी चाहिदी है। लोकी की करदे ने (दूसरों) दे दोष ही देखदे रहिंदे ने। (पृ. ७५)

बेटों के स्वार्थ और पिता के स्वाभिमान को अभिव्यक्त करनेवाली कहानी है-बैसाखिआ बणिआ मोतिआनिंद दोनों बेटे अच्छे पदों पर कार्यरत हैं। माता पिता बड़े बेटे मोहन के पास रहते हुए घर खर्च चलाते हैं। पहले पूरी तनख्वाह और फिर पैंशन में ही लगा देते है। जरूरत न होने पर भी बहू नौकरी करती है। जब घर में पैसा देना बंद करते हैं तो बेटे फैसला करते हैं कि एक ही बेटा दोनों का खर्चा क्यों उठाए इसलिए माँ रंजन के पास रहकर उसके बच्चे को संभालेगी। छोटे बेटे के रहने जाने के लिए जब माता-पिता दोनों सामान बाँधने लगते हैं तो मोहन कहता है कि रंजन ने सिर्फ माँ को बुलाया है आप यहीं रहोगे। नीता, मंजू दोपहर को स्कूल से आ जाती हैं। शाम तक अकेली कैसे रहेंगी। जमाना कितना खराब है।

पिता के कहने पर बहू नौकरी छोड़ दे या कोई काम वाली रख लो। बड़ी बहू का उत्तर चौंकाने वाला था-विश्वास वाले नौकर अज कल किथे मिलदे ने खाणा कपड़ा तनख्वाह ता इक पासे रिहा किसे दिन घर ही साफ कर देण। (पृ. ८०)

पिता कहते है-सुण रही है भगवान। पिता नौकर तो सस्ता ते ईमानदार की होतेगा।

अपनेपन के नाम पर बच्चे माता पिता का शोषण कर रहे हैं। गल आपने दी है। तुहाड़े (तुम्हारे) रहिंदीआ असी निश्चिंत रहांगे। (पृ. ८०)

पिता समझते हैं कि माँ कमजोर है, अकेली बच्चा नहीं संभाल सकती परंतु बच्चों की आँखों पर तो स्वार्थ का चढ़ा है। उन्हें अपने अलावा कुछ सूझता ही नहीं। जब से स्त्रियां नौकरी पर जाने लगी हैं तब से अधिकतर माता पिता इस समस्या का सामना कर रहे हैं।

पिता ने अच्छी परिवरिश की। दोनों को मकान भी बनवा दिया। अलग घर बनवाने पर भी बेटे ने नहीं कहा वह उनके साथ रहेगा। उसे तो शिकायत है कि 'वडे (बड़े) मरा (भाई) दे परिवार जू बारह साल पालिआ पापा ने। इक दमड़ी नहीं लई। भरा-भरजाई (भाई भाभी) ने अच्छा बैंक बैलेंस

बणा लिया। साडे (हमारे) सिर ते ता हुण तौ ही गृहस्थी दा बोझ पै गिआ। पृ. ८२

अपनी इच्छा दबा कर बच्चों की इच्छाएं पूरी करते हैं। बच्चे घूमने जाते हैं तो सोचते भी नहीं कि माँ पिऊ नू वी घुमा लुआइए। एक माँ है जो सोचती है कि तीर्थ पहाड़ ता साड़े एह बच्चे ही हैन। कदे एहना दे हथ तंग होए ता एहना दे (काम) आऊणगे। (पृ. ८६) पैसे बचा कर भी माँ बच्चों को देना चाहती है।

पिता निर्णय लेते हैं कि आपणीआ इच्छावा जे असी नहीं कर सके इन्हा नू करवाईआ। सच एह है कि हुण तैनू घुमावांगा। (पृ.८५) बेटा माँ को लेने आया तो बृजभूषण ने निर्णायात्मक स्वर में नहीं जाएगी। तुसी लोक आपणी गृहस्थी आप संभालो। उसी कल ही किराए दा घर देख लवांगे। मेरी पैंशन एहनी ता है-मजे नाल रहि सकदे हो। किऊ बटवारा करो साडा-अरे बैसाखीआ बणदे साडे बुढ़ापे दीजा बण गए मोतिअबिंद।

लड़के मुंह टंडी फटीआ अखा नाल देखदे रहि गए। उहना नू पता पिताजी जो कहिंदे हन उही करदे हन। (पृ. ८६)

बख्शी जी यहां बताती है कि हर समस्या का समाधान व्यक्ति के पास है जरूरत है उसे अपनी शक्ति पहचानने की। बच्चे भूल जाते है कि जो पिता अपने बच्चों और उनके परिवार को पाल सकता है, वह अपनी पत्नी की करने का सामर्थ्य भी रखता है।

पत्नी-माँ घर की शेभा होती है। मकान स्त्री से ही घर बनता है। घर पत्नी से ही सुशेभित होता है। यही भाव 'कद तक' कहानी में व्यक्त हुए हैं। पत्नी के रहते हुए पति निश्चिंत रहता है। नीलेश रिटायर होते हैं तो छोटे का मेडिकल में दाखिला करवाते हैं। बड़ा बेटा आईआईटी से इंजीनियरिंग कर अमेरिका में पढ़ कर नौकरी पर लग गया था। उसका विवाह भी हो गया था। बड़े भाई ने छोटे भाई कमल को अमेरिका बुला लिया था और घर में पैसे भी भेजता रहता था।

नीलेश नौकरी के कारण कहीं घूमने नहीं गए थे। इसलिए कभी मनाली तो कभी पांडिचेरी और दक्षिण के जंगल-पहाड़ों में घूमते रहते। ममता घर का पूरा ध्यान रखती। हमेशा बच्चों की तरफदारी करती कि बेटे बेफिजूल खर्चा नहीं कर दे पड़न (पढ़ने) दी रूचि है। (पृ. ४०) ममता किफायत से घर चलाती। बच्चों की बनी रहती। उन्हें समझाती (शौक-पूरे करो बेटा पर थोड़ा सोच के जिहड़ी (जो) इच्छा काबू न आए, बहुत जरूरी होवे बस ओही (वही) पूरी करो। (पृ. १२) माँ के संरक्षण में बच्चे संस्कारी थे। ममता बड़े बच्चों को याद करती और सोचती कि छोटे बेटे समीर को दूर नहीं

ममता एक विवाह समारोह में जाने लगती है तो नीलेश कहता है कि वहाँ कोई अच्छी लड़की देख लो कमल का भी विवाह कर देंगे किंतु एक ट्रक से टक्कर लगने से ममता की मृत्यु हो जाती है। उसकी मृत देह देख नीलेश को सदमा लगता है। पल भर ही उसका जीवन बदल जाता है। निश्चिंत, मस्त मौला नीलेश गंभीर हो जाता है। अमेरिका फोन करके कहता है रोवो नहीं बेटा। जो होणा सी हो गिआ दो महीने बाद छुट्टी है ना, ता आ जाना। दूसरे दिन बॉडी मिली अंतिम संस्कार करके बाप-

बेटा वापिस आ गए। नीलेश ने  के सिर पर हाथ रख कर कहा कॉलेज जाओ बेटा।

जो नीलेश घूमता रहता था और बंगाल, उड़ीसा की जानकारी देनेवाली किताबें पढ़ नोट बनाता रहा और सपने देखता रहा कि छोटे बेटे की पढ़ाई पूरी हो जाए तो ममता के साथ घूमने जाएगा, वही एकदम जिम्मेदार पिता बन  बच्चों को सांत्वना देता है-जा बेटा! ममता सी ता एस घोंसले चो उड़ (उड़) जादा सा हुण साथण बिना सुन्ना घर संभालना होवेगा कद तक? (कब तक?)

इस तरह पति पत्नी के संबंध एवं परिवार की सफलता में पत्नी की भूमिका का बख्शी जी ने बखूबी चित्रण किया है।  माँ और बेटी के रिश्ते का वर्णन किया है जो बेटी के प्रति अपने प्रेम का प्रमाण देने के लिए अपने ही बेटे की खिड़की से बाहर फेंक कर हत्या कर देती है।

'बाहर जा चुकी सी' में सोतेली माँ बेटी को बहुत प्यार करती है। उसकी हर जरूरत  ध्यान रखती है परंतु पिता को लगता है कि वह अपने बेटे को ज्यादा करती है। एक दिन माँ बेटे को बेटी के पास छोड़कर दूध लेने जाती है तो पिता आकर कहते है कि बेटी पढ़ने बैठी है तो लड़का पकड़ा कर चली गई।

माँ का उत्तर स्थिति की  एवं यथार्थ को चित्रित करता है-''मैं पढ़ा रही हां ना। ना शांति नाल रीणा चाहुंदे हो ना जीण दिंदे हो। अशांत वातावरण विच विचारी (बेचारी) बच्ची समे (समय) तो पहिला मुरझा जाएगी। ईश्वर दा वास्ता जे बच्ची दे भविष दा सोचो। एसजू किसे होस्टल विच पा दिऊ। जिथे शांत  विच लड़की पढ़ेगी (पृ. १०६)

पिता ने क्रोध में कहा कि आपणे बच्चे नू बाहर सुट (फेंक) सकेगी? एस ने घरों क़े बिना तैनू चैन नहीं आऊणा।'' (पृ. १०६) बच्चे नू छाती नाल चिपकाई माँ गैलरी वल दौड़ गई। एहनी (इतनी) तेज़ की पल विच बच्चा बाहर सुट दिता। १०६) मरा हुआ बच्चा लेकर नीचे वाले पुलिस के साथ आए। माता पिता को पुलिस पकड़ कर ले गई। माँ बोलती रही-''मेरे तो विश्वास करो-माँ सोतेली हाँ पर पिआर सोतेला नहीं।''

बेटी ने भी पिता से कहा-माँ नू क्यों डाँटते हो पापा? माँ मैनू बहुत पिआर कर दी है।' माँ  भी कहा आपने मन तो संदेह कढ दिऊ घर स्वर्ग बण जावेगा। तुसी रस्सी नू सप (सांप) समझ रहे हो। मेरे मन बिच शीला लई कोई बुरी भावना नहीं। (पृ. १०५)

इस प्रकार शक के कारण बसा बसाया घर उजड़ गया। आज फिर वैसी ही परिस्थितियाँ हैं। शीला का  के प्रोफेसर वर्मा जी से कॉलेज में परिचय होता है। परिचय प्यार में बदल जाता है। तभी उसे वर्मा जी बताते हैं कि उनकी पत्नी एक बच्चे को जन्म देते हुए मर गई थी। बच्चा उनकी माँ के पास है। उसके जैसी प्यारवाली, कोमल दिल लड़की को बिना संकोच सौंप सकते हैं। उसके सामने अपना जीवन आ गया।

शीला परीक्षा खत्म होने पर पूना पिता के पास जाने लगी तो कहा पापा से बात करके चिट्ठी लिखेगी। पर वह निर्णय लेती है कि उनका बच्चा नहीं कभी नहीं। इस कहानी में बख्शी जी के जीवनानुभव का सूत्र वाक्य माँ बच्चे नू डॉट रही होवे ता पिता नू विच नहीं आऊणा चाहिदा। बुरा प्रभाव पैदा है। (पृ. १०४) हर जिद त करना गैर जिम्मेवारी है। आपने मन तो संदेह कह ऊ घर स्वर्ग बन जायेगा आदि।

महानगरीय जीवन में पली बड़ी लड़कियों द्वारा छोटे शहरों के लड़कों को ठुकराया जाना 'डोनी' कहानी में व्यक्त है। मरीअम 'डोनी' को इसलिए छोड़ जाती है कि कस्बे में कोई घूमने की जगह नहीं है।

डोनी बिजली का काम करता है। कस्बे में हुआ विद्युत केंद्र बना है। इसलिए काम बहुत है। कस्बे में रहनेवाली मैरी डोनी से विवाह करना चाहती है परंतु पहले से निराश डोनी माँ के विवाह के हर प्रस्ताव को ठुकरा देता है। वह भी मेरी को पसंद करता है परंतु कह नहीं सकता और अंजाने में माँ द्वारा मैरी से विवाह के प्रस्ताव को भी ठुकरा देता है। जब बहन से पता लगता है कि डोनी के इंकार पर मैरी ने किसी और से विवाह करने के लिए हाँ कर दी है। यह खबर सुन कर डोनी विवाह में रोशनी करने के लिए तार जोड़ने लगता है। डोनी का बेजान शरीर तारों पर लटक जाता है। (पृ. ५७)

डोनी कहानी का निराशावादी दुखांत है अन्य कहानियों में ने अंत में आशावादी संदेश दिया है। यहां कहानी का अंत बदला जा सकता था क्योंकि किसी के जाने से जीवन खत्म नहीं होता। रचनाकार का उद्देश्य सही दिशा निर्देश है। वह जाने अनजाने पाठकों को प्रभावित करता है।

'सूबेदार बग्गा सिंघ' देश प्रेम की कहानी है। इसमें अपनों दूर रह कर अपनों की खुशी के लिए सब रिश्ते दूर रहकर निभाने का मर्म स्पर्शी वर्णन है। चीन की लड़ाई में सूबेदार बुरी तरह जख्मी होता है और याददाश्त खो देता है। दस साल बाद जब उसे सब याद आता है तो अपना विकृत चेहरा देख कर वहीं अस्पताल में रह कर लोगों की सेवा करने का निर्णय लेता है।

कारगिल की लड़ाई में एक दिन जख्मी कर्नल आता है जो पखोवाल उसके गाँव का है। बातों-बातों में बग्गा को पता लगता है वह उसका बेटा है। बेटे से सभी घरवालों की जानकारी लेता है। धीरे धीरे ठीक हो गया। बग्गा सिंघ उसे अपना परिचय नहीं देता पर उसके परिवार को घर बुला सबको उपहार देता है। बेटा कहता है कि बेटे और बेटी को डाक्टर-इंजीनियर बनाकर फौज में भर्ती करेगा तो बग्गा सिंघ खुश हो जाता है कि फौज में भर्ती होने की परंपरा भी है।

बख्शी जी खेद प्रकट करती हैं कि 'भोले बच्चिआं नू अनजाने की सिखा दिता? बचपन विंथ असीवी (हम भी) चोर सिपाही खडदे (खेलते) हुंदे सी-चोर कुटदे सी चोरी अच्छी नहीं सिखदे सी। अज (आज) बच्चे मर्म दा अर्थ लैणगे इक दूजे नू मारना। क्यों? धर्म रंग-वर्ण-धर्म-धन आदमी दे विच आ जादा है। (पृ. ९५)

दंगो का लेखिका ने सजीव, सटीक, हृदय विदारक वर्णन किया है। शहर से कई हिस्सिआ तौ

झोपड़िआ धधक रहीआ सन। धुआं खामोश ऊपर उठ जादा है।'

कमलेश बख्शी जा के अनुसार परिवार का सहयोग हो तो बड़े-बड़े दु:ख कट जाते हैं। 'मैनू सहारा है माँ-पिऊ दा, भावी ते भरा दा-बस कदे कदे मन दुखी हो जांदा है। कदे कदे आपणा ही विऊहार स्नेहजना तो टूट कर दिंदा है। (अग्नि परीखिआ पृ. १६) गम खुशी जिंदगी दे हिस्से हना उदासी नू आपणे तो दूर रखो। जीणा है ता हंस के किऊ नहीं? नकारात्मक भाव मन विच आऊण वी ना दिऊ। (अग्नि परीखिजा, पृ. १७)

मैं सिर्फ एह कहिन चाह रही हो कि वर्तमान बिच जीओ, सुखी भविष्य दे लई सकारात्मक विचार मन बिच रखणा चाहीदा है। अतीत नू भुलाऊणा आसान ता नाहीं पर कोशिश ता कर दे रहिणा चाहीदा है। (वही, पृष्ठ-१७)

संदेश कमलेश बख्शी जी की कहानियों का है। हिंदी कहानियों की तरह पंजाबी कहानियों का कलेवर देश और विदेश से लिया गया है। कहानियों के माध्यम से व्यक्तिगत एवं सामाजिक समस्याओं का उल्लेख मात्र नहीं है बल्कि कमलेश बख्शी जी ने अनुभवी जीवन से उनके समाधान भी दिए हैं। पंजाबी मुहावरों के प्रयोग से भाषा रोचक एवं प्रभावपूर्ण बन गई है।

अध्यक्ष, हिंदी विभाग
गुरुनानक महाविद्यालय,
गुरुतेग बहादुर नगर,
सायन (पूर्व), मुंबई

# महानगरीय जीवन के संघर्ष से उपजी कहानियाँ

**प्रो. कला जोशी**

महानगर किसे कहा जाए? कई-कई उपनगरों, विशाल अट्टालिकाओं कॉम्प्लेक्सों, सोसायटियों में बसे संभ्रात एवं मध्यम वर्गीय परिवारों का जीवन और उसके साथ झुग्गी-झोपड़ियों, चालों और फुटपाथों पर घिसटता जीवन। महानगरीय सभ्यता में घटित होते ऐशो आराम, भव्य पार्टियाँ, फिल्मी दुनिया के लोगों की ग्लेमरस जिंदगी, कापोर्रेट जगत की सियासी एवं व्यावसायिक चालें, पनपते हाई प्रोफाइल षडयंत्र, झुग्गी-झोपड़ियों में जीवन की तृषित इच्छाओं में फन उठाते अपराध, सामाजिक कुचक्र को तोड़ते नित नये कारनामे, रेड लाइट ऐरिया में देह व्यापार में सिसकती जवानियाँ, तरसता बुढ़ापा और अनाम बच्चों का दिशाहीन भविष्य आदि-आदि यथार्थ महानगरों का सच है। जहाँ इच्छाएँ पनाह पाती हैं। इन इच्छाओं को फलीभूत होते कौन देख पाता है, कौन नहीं? यही सवाल महानगरीय जीवन को परिभाषित करता है। एक जिंदगी की ऊचाँइयों को छूना चाहता है, उस पर टिकना चाहता है। दूसरा आम जिंदगी में दाल-रोटी भी जुटा नहीं पाता। इसी जद्दो-जहद में आसपास का सब छूटता चला जाता है। अपना कहने को बहुत होता है पर अपना कोई नहीं होता। महानगरीय जीवन के कई-कई पहलू हैं, हर वर्ग, हर समूह, जाति, धर्म, पंथ और व्यवसाय के लोग यहाँ बसते हैं। अथाह पूँजीवान और पूँजीहीन, अमीर और गरीब, विलासी जीवन और भिनभिनाती मक्खियों के बीच जीवन, वैभव के मद में चूर जीवन और दाने-दाने को मोहताज जीवन, विलायती मँहगी शराबों की कॉकटेल पार्टियाँ और देशी दारू के मद में सना निम्नतम वर्गीय जीवन। ये सब महानगरीय जीवन की अच्छी-बुरी, श्वेत-काली पूँजियाँ हैं, जिनको समुन्दर की लहरें उठाती-गिराती रहती हैं। इसी महानगरीय जीवन की कहानियाँ कमलेश बक्शी ने महानगर की श्रेष्ठ कहानियाँ में संकलित की हैं। महानगरीय जीवन के विविध पक्षों को लेकर कई कहानियाँ लिखी गई हैं। सवाल उठता है महानगर की कहानियाँ कौन सी मानी जाएँ? क्या जो महानगर के जीवन को सटीक प्रस्तुति करती हो अथवा वे जिनमें महानगर बोलता हो? महानगर का फलक बहुत विस्तृत है। यहाँ गाँव का आदमी भी काम की तलाश में आता है, मजबूरी में यहीं का होकर रह जाता है। गाँव में घटित होती उसकी कहानी महानगर में आगे बढ़ती है, कभी कहानी सुखान्त होती है, कभी बीच में ही दम तोड़ देती है, कभी जिंदगी के साथ घिसटती चलती है कहानी। मानव तस्करी से आई लड़कियाँ, भागी हुई लड़कियाँ, फिल्मी जीवन की चकाचौंध से छली लड़कियाँ, रेड लाइट ऐरिया में पनाह पाकर अपनी देह बेचने को मजबूर हो जाती हैं। इनकी देह से गुजरकर महानगरों की रातें जगमग होती हैं। इस जगमगाहट में देह की कई-कई कहानियाँ आकार लेती हैं।

महानगर की चालों का अपना पृथक और सामूहिक जीवन है। चालों के साझा गलियारों में निम्नवर्गीय समाज के कई मसले उलझते-सुलझते हैं। जिंदगी की कशमकश में अपने लिए कुछ जुटा लेने के प्रयास कभी सफल होते हैं कभी असफल। कभी जीवन आशा से भर जाता है, कभी सिर पटककर वहीं थम जाती है जिंदगी। कमलेश बक्शी की अधिकतर कहानियाँ इन्हीं चालों की प्रतिनिधि कहानियाँ हैं। कुछ एक कहानियों को छोड़ दिया जाए तो शेष सारी कहानियाँ मुंबई महानगर की चालों के जीवन यथार्थ को प्रस्तुत करती हैं। संग्रह का नाम महानगरीय जीवन के एक पक्ष की प्रस्तुति है। संभ्रांत एवं उच्च वर्गीय जीवन की कोई झलक इसमें नहीं है। वास्तव में इस संग्रह को महानगर मुंबई की चालों की कहानियाँ कहना अधिक उचित होगा, हो सकता है।

इन कहानियों का उद्देश्य उस सामाजिक यथार्थ को प्रस्तुति करना है जिनकी तरफ हमारा ध्यान नहीं जाता है। चालों का अपना अजब संसार है। यहाँ की वासिनी कामगार स्त्रियाँ हैं। कोई बंगले में काम कर उच्चमध्यम वर्गीय जीवन को समीप से देखती है। कोई कारखानों, मिलों आदि में काम कर जीवन के सच-झूठ और कई कड़वे अनुभवों से गुजरती है। लेखिका ने अपने घर के आसपास की चालों के जीवन को बहुत पास से देखा है। पुस्तक की भूमिका में वे स्वयं लिखती हैं-ब्रफोरजेट स्ट्रीट की इमारत के आसपास खुले मैदान थे। संकरी गलियों के आसपास कई चालें- इन्हीं चालों की औरतें इस इमारत में झाड़ू-पोछा, बर्तन, कपड़े धोने आती थीं। अधिकतर के पति शराबी। मार भी खाती, उसे खाना भी देती, बच्चे भी पालती। टुकड़े-टुकड़े में अपना दुख-दर्द बाँटती। इन्हीं दुख-दर्दों की कहानियाँ लेखिका ने समय-समय पर अपने पात्रों से सुनी हैं। महानगर की चालों की ये कहानियाँ छटपटाती-कराहती फिर भी संघर्ष करती स्त्रियों की कहानियाँ हैं। महानगर अपने आप में एक स्वार्थी पात्र है जो व्यक्ति की जिंदगी में जब घुस आता है तो अपनी तरह से उसे चलने को मजबूर कर देता है। गरीब व्यक्ति को जब वह सपनों की महत्वाकांक्षी दलदल में ले जाता है, तो वह अपराध की दुनियाँ में प्रवेश कर लेता है। स्त्रियाँ देह व्यापार के कुचक्र में उलझ जाती हैं। ऐसे में हाड़तोड़ मेहनत करती स्त्री घर-परिवार को बचा ले जाने की जद्दोजहद में पति से पिटती है, समाज से छली जाती है। तिनका-तिनका परिवार बसाने का उसका सपना टूट जाता है। यदि स्त्री व्यवस्था से विद्रोह करती नजर आती है तो सब मूक दर्शक बने रह जाते हैं। भारतीय समाज की यही तो विडम्बना है, अन्याय का प्रतिकार न करना, चुपचाप शोषित होते रहना यही तो वह अपनी नियति मान बैठा है। इसलिए युगों से निम्नवर्गीय समाज पीड़ित होता रहा। अन्याय सहता रहा है। लेखिका के स्त्री पात्र विद्रोह की भूमिका में भी खड़े नजर आते हैं। ऐसी विद्रोही स्त्री पात्र अपने स्व को बचा ले जाती हैं। इसके लिए भले ही उसे पति को छोड़ना पड़े। उसे अपने हाथ-पैरों पर भरोसा है। वह अपना और बच्चों का पेट भर लेगी। काम की कोई कमी नहीं है महानगर में इसलिए तो महानगर सबको खींचता है।

तब संयोग नहीं थे एक बड़ी होती बेटी की मानसिकता दर्शाती है। बत्तीस वर्ष की होने के बाद भी संजना की शादी नहीं हो पाती। भाई वरुण शादी के बाद अपनी पत्नी के साथ अलग फ्लैट लेकर रहने लगा। घर में माँ-बेटी रह गईं। बढ़ती उम्र के साथ लड़के मिलने और कठिन हो गए। संजना की

कभी स्वीकृति, कभी नकार जैसी प्रवृत्ति होने लगी। माँ-बेटी के संबंधों में अजनबीपन आ गया था। उन दिनों प्यार का एक लम्हा भी नहीं बचा था दोनों के बीच। संजना स्वयं को अभागी मानती थी। दिन भर काम। कॉपी जाँचो पढ़ाओ। बस में धक्का खाओ। संजनाके जीवन का लक्ष्य महज शादी था क्या? एक अच्छी भली नौकरी करती महानगरीय युवती की सोच किधर जा रही है? माना कि आपा-धापी का जीवन त्रस्त कर देता है, किन्तु जिंदगी में कोई अभाव नहीं था। अभी भी समाज में बड़ी होती लड़की के लिए पति की अनिवार्यता को सहज स्वीकारता है। लेखिका भी समाज की उसी मानसिकता की वाहिका है। उसने संजना की मानसिकता, उसकी चिड़चिड़ाहट को बखूबी उभारा है। माँ अपनी जगह सही है किन्तु वह क्या करे। समय पंख लगाकर उड़ रहा है, बढ़ती उम्र को तो वह थाम नहीं सकती। उसका प्रयत्न निष्फल क्यों रहा? लम्बे समय तक साथ रहते तनाव के कारण परिस्थितियाँ ऐसी बन जाती हैं। माँ-बेटी में छोटे-छोटे मन मुटाव होते। कई बार एक दूसरे को बर्दास्त करना कठिन हो जाता। संजना कई बार भूल जाती माँ ममता से भरी है। वह उस पर अपनी कुढ़न निकालती है किन्तु यही संजना जब विवाह कर अपने पति के घर जाती है तो मृत सौत के बच्चों पर अपनी संपूर्ण ममता उड़ेल देती है। संजना को लगता है यही उसके मातृत्व की पूर्णता है।

'टूटा फूलदान' स्त्री-विमर्श की कहानियों में शुमार की जा सकती है। इसकी नायिका संजना परिवार, धर्म और विवाह संस्था में विश्वास करती है। वहीं 'टूटा फूलदान' की मालिनी पितृसत्ता के नाम पर पति को देखती है, परिवार तथा धर्मसंस्था को नहीं। अपने छीन लिए गए बच्चे की ममता के सहारे वह नर्स बनकर समय बदलने की प्रतीक्षा करती है। वह जानती है अब तक के समाजों में हर संघर्षों के बाद या बीच में हारना स्त्री की नियति रही है। मालिनी की लड़ाई दो स्तरों पर एक साथ चलती है। उसे अपनी स्वाभाविक प्रकृति को बचाकर रखना है और दूसरी तरफ उन आक्रमणों को भी झेलना है जो उस पर समय-समय पर किये जा सकते हैं। अपनी भीतरी लड़ाई में वह सफल होती है। उसके अंदर की ममता जीत जाती है, जब बड़ा होकर बेटा सदा के लिए माँ का साथ देने आ जाता है। राजा स्त्री की अपनी स्वतंत्र सोच एवं निर्णय क्षमता के लिए एक उम्दा कहानी है। यद्यपि लेखिका ने इसमें एक स्त्री के लिए बच्चे को अनिवार्य माना है। पति असमर्थ है। वह तलाक लेकर दूसरा विवाह कर लेती है। इस स्त्री की अपनी दृष्टि हैं। उसे विश्वास है, वह माँ बनकर ही पूर्णता को प्राप्त कर सकती है। वह अपनी ममता को अपने बच्चों में खिलता देखना चाहती है। अपने पति को इसलिए वह त्याग देती है। लेखिका की उसके प्रति जरा भी सहानुभूति नहीं है। वह उसे समाजसेवा करते दिखाती है। यदि कोई स्त्री बच्चे की चाह करती है तो इसमें क्या गलत है? उसकी भावनाओं का कोई मूल्य नहीं? दूसरी स्त्री भी समाजकार्य में लगी है किन्तु उसका नजरिया अलग है वह वास्तव में वंचितों, शोषितों के लिए कुछ करना चाहती है। उसका पति प्रोफेसर पद से सेवानिवृत हुआ है। पहले वह उनकी शिष्या थी अब पत्नी है। पति उसे बहुत प्रेम करते हैं। किन्तु शादी के लिए तभी तैयार होते हैं जब वह बच्चे की चाह त्याग देती है। बीस साल गुजर गए। प्रेम, वात्सल्य, आजादी, मान-इज्जत सब कुछ मिला। नौकरी करते-करते बच्चे के लिए दुआ माँगी थी पर फलित नहीं हुई। कहानी चरम पर तब पहुँचती है जब पहली स्त्री से पता चलता है उसका पूर्व पति प्रोफेसर

नाडकर्णी था। दूसरी स्त्री ने बीस साल बाद जाना उसका पति क्यों बच्चा नहीं चाह रहा था। पिछले वर्षों की व्यस्तता में बच्चे की कमी खली तो, फिर सब कुछ भूल गई थी। वह सोचती है यदि वह पहले ही बता देते तो भी वह उनसे शादी तो करती ही किन्तु अब मन में एक फाँस अटक गई। जब वह यात्रा से घर लौटती है तो अपने से पच्चीस वर्ष बड़े पति का वात्सल्य से भरा स्पर्श पाकर अपनी ममता को उनसे जोड़ लेती है। दो स्त्रियों के अलग विचारों के दो ध्रुव इस कहानी में टकराते हैं किन्तु दोनों ही स्त्रियाँ अपनी ममता के रास्ते तलाश लेती हैं। सामाजिक चेतना और मिथ्या चेतना को सामाजिक यथार्थ से यदि जोड़ा जाए तो लेखिका अपना विवेक और निर्णय दूसरी स्थिति में दूसरी स्त्री के साथ साझा करती है। पहली स्त्री उनकी दृष्टि में सक्रिय भूमिका निभाकर अपने स्वयं के विचारों की वाहिका है। उसका स्व यहाँ अस्तित्व लेता दिखाई देता है, किन्तु इसमें गलत क्या है? यह भी तो एक नई राह हो सकती है।

रिक्त स्थान आशा में झूलते भविष्य को थामने की कोशिश है। एक पिता अपने बेटे को पढ़ा-लिखा कर बड़ी नौकरी करते देखना चाहता है। वह अथक परिश्रम करता है। दिन में आफिस में काम, रात में साहब की गाड़ी चलाता है। दोनों जगह से तनखा पाकर रुपए तो जोड़ता है, पर भटक जाता है। एक तनखा वह शराब में उड़ाने लगता है और एक दिन अपना मानसिक संतुलन खो बैठता है। एक ऑफिस का चपरासी जिसे दो-दो जगह से वेतन मिलता, हाथ में अधिक रुपए पाकर फूला नहीं समाता। उसका सोचना है यदि कुछ रुपए शराब में खर्च कर दिए तो कुछ नहीं होगा। मनीष की पढ़ाई के लिए वह बचा ही लेगा रुपया। अभी-अभी उसने बारहवीं पास की है अब कॉलेज जाएगा। बड़ी नौकरी करेगा। बड़ा आदमी बनेगा। उसके सारे सपने हवा हो गये। वह शराब में क्या डूबा, शराब उसे ले डूबी। अपने मस्तिष्क पर नियंत्रण खो बैठा। मनीष क्याा करता। मजबूरन पढ़ाई छोड़कर पिता की जगह काम पर लग जाता है। उसे परिवार की जिम्मेदारी उठाना है, बहिन की शादी करना है, पिता का इलाज करवाना है। असहाय पिता ने उसके लिए क्या-क्या सपने देखे थे। एक मजबूर, असहाय गरीबी में जीता परिवार क्या सपने देखने का हकदार नहीं है? लेखिका उसके सपनों को आशा के पंख लगाती है। मनीष अपने पिता से कहता है -'तुम्हारी चरणों की सौगंध बाबूजी आज ही नाइट क्लास में भरती होता हूँ। तुम्हारी अभिलाषा अवश्य पूरी करूँगा।' अपने अंदर बाबूजी द्वारा अंकुरित की गई प्रबल इच्छा पढ़ना, आगे बढ़ना, अच्छी नौकरी करने के संकल्पों को उसने दृढ़ कर लिया। लेखिका ने अमानवीय होती स्थितियों में आशा का दीप जलाये रखा है। दलदल गाँव से काम की तलाश में आये एक ऐसे युवक की कहानी है जो काम तो पा गया, पर एक शहरी लड़की के प्रेम व्यूह में ऐसा उलझा कि जिंदगी से हाथ धो बैठा। लेखिका ने शहरी लड़की के बहाने मुंबई शहर के चक्रव्यूह में धँसते गाँव के नौजवानों की स्थिति को व्यक्त किया है। यह महानगर है ही ऐसा जिसके चक्रव्यूह में आप घुस तो सकते हैं, किन्तु उससे निकलना, मुक्त होना, वश की बात नहीं। आज जब शहर गाँव को लीलते जा रहे हैं, तो गांववासी कहाँ जायेगा। उसे शहर का हिस्सा बनना ही पड़ेगा। गाँवों के छोटे-छोटे धंधे सुखा गए, तब पंकज को भी शहर की ओर जाने में फायदा लगा। काम-धंधा भी जुटा दिया महानगर ने। उसकी जिंदगी में आधुनिक

टाइपिस्ट ने प्रवेश किया। दुकान में टाइपिंग करते-करते वह उसके निजी जीवन की उमंगों को भी टाइप करती गई और मोहिनी ने उस पर भी अधिकार कर लिया। विवाहित पंकज उसके प्रेमजाल में उलझता गया। उसे तनिक भी होश नहीं आया, प्रसव के बाद जब पत्नी सुषमा आयेगी तो क्या होगा? इस तरह यह महानगर एक नहीं तीन जिंदगियों और भविष्य को भी ग्रहण लगा देता है। मोहिनी के रूप में आकर वह सुषमा और उसके बच्चे का भविष्य अंधकारमय होने के लिए छोड़ देता है। मोहिनी सब कुछ लूटकर भाग जाती है और पंकज नशे में देह त्याग देता है। मुंबई का यह नशा बेरोजगार नौजवानों को अपनी ओर खीचता है। इसके मोह से बचना कठिन है। कमलेश जी यहाँ नौजवान पीढ़ी को सचेत करती हैं, जो ऊपर से दिखता है लुभावना, अंदर से बेमुरौवत भी हो सकता है।

भोगा हुआ यथार्थ स्त्री-विमर्श की कथा है। आर्थिक रूप से सक्षम और आत्म निर्भर श्यामला निठल्ले पति को खिलाती है, घर देती है। कुछ समय तक तो ठीक चलता है फिर पति का मूल रूप प्रभुत्व का रंग लेने लगता है। श्यामला साहसी है। ऐसे पति से कैसे निपटना है जानती है, फिर भी घर बचाने की खातिर समझौता करती है। जितनी उसने कोशिश की वह उतना की डूबता गया शराब में, जुए में, कर्ज में। कभी लगता कि खूँटा है जिससे समाज, धर्म, लज्जा की रस्सी ने बाँध रखा था। बंधन तोड़ना कठिन लगता है। आखिर उसने सोचा समाज ने उसके लिए क्या, किया? वह क्यों डरे? नतमस्तक हो अत्याचार क्यों सहे? कब तक झूठा रिश्ता ढोऊँ? दस वर्ष का नारकीय जीवन ढोते-ढोते वह थक चुकी थी। उस पर भी तलाक की धौंस? श्यायमला ने इस धौंस को सच में बदल दिया। अब एक सुकून की जिंदगी है, फ्लेट है, नौकरी है, एक पेइंग गेस्ट है। अब तो वह बेटी बन गई है। अपने जब बेगाने बन जाते हैं तो भीड़ में से कोई अपना भी बन जाता है और दुनिया चल निकलती है। लंगड़ा ज्योतिषी ज्योतिष की भविष्य वाणी को सच मानकर अपने गाँव को छोड़कर महानगर आये युवा की कहानी है। गाँव में पिता कह-कह कर थक गए। बेटा मैट्रिक पास कर ली। अब अपनी दुकान में काम करो। उस पर तो ज्योतिषी के कथन का असर था तुम्हारा भाग्योदय महानगर में होगा। इसी को गाँठ बाँध कर मुंबई भाग आया। लेखिका ने युवा को महानगर की सच्चाई एवं कर्म की महत्ता को घटनाओं के द्वारा दिखाया है। ज्योतिषी अगर सब कुछ सही बताता तो वह क्यों इस तरह भटकता? अपना पैर तुड़वाकर, ज्योतिषी की शरण ले लेता है। उसकी जगह स्वयं ज्योतिषी बनकर भी उसने कुछ नहीं पाया। अब वह लौट जाना चाहता है गांव। ज्योतिषी छल है, भुलावा है। अब वह किसी और को नहीं छलेगा। वह कहना चाहता है, दिखाना चाहता है- 'नामी ज्योतिषी खतरा जान' की पट्टिका। अगली सुबह वह नई राह, कर्म की राह पर चलने की जिद पर अडिग है। अंतर में चल रहे द्वन्द्वों को पकड़ने की कोशिश है कहानी 'शव जो अर्थी पर नहीं बँधे'। एक कमरे की गृहस्थी में जीवन को ढोते परिवार में माँ-बाप, भाई-बहिन के साथ शरद भी है। इस कमरे में भाई-बहनों का प्यार, स्नेह तो है किन्तु माँ-पिता के रिश्ते भावहीन, संवेदना शून्य हैं। इतने छोटे कमरे में रात में परदा टाँगकर दो भाग करके उमंगों को, आकाक्षाओं को भी सुला देना जीवन तो नहीं हो सकता। महानगर रोटी तो देता है, जमीन नहीं। एक कमरे में सिमट आए जीवन के तमाम

साल, उसके ही नहीं भाई-बहिनों, माता-पिता सबके .....कैसे अपने जीवन को इसी यथार्थ के साथ आगे बढ़ाएगा। यहाँ अवकाश कहाँ निजता का? इसी उहा-पोह में जीवन में बचपन कब बीता पता ही नहीं चला। वैसी भी इन चालों में बचपन कहाँ है? शरद की यह स्पंदनहीन युवावस्था मृत्यु के समान है। इस कमरे में बहिन की शादी, पिता की मृत्यु और अब माँ का शादी के लिए लड़की ढूँढना कैसे हो पाएगा। उसने अपने मन में सब आकांक्षाओं का गला घोट दिया है। सभी उमंगें तो मर चुकी हैं, फर्क इतना है कि अर्थी नहीं उठी है, कोई चीखा नहीं है, किसी ने जाते हुए शव को रोका नहीं है, उससे लिपटा नहीं है। सबकी कब्रें उसने अंदर बना डाली थीं। कभी-कभी स्मृंति में एक आँसू चढ़ा देता कब्र पर। लेखिका ने शरद के अंतर के दर्द को बखूबी उभारा है। जीवन जहाँ पथरा गया हो तो उस पर कौन संवेदनाएँ टिकतीं। यदि विवाह के बाद पत्नी आती है, तो वह प्रेम के दो बोल कैसे कह पाएगा? क्या माता-पिता की तरह अपने अंतरंग क्षणों को नि:शब्द रखने देगा? इसी द्वन्द्व के बीच वह सोचता है। बहिन के जाने एवं पिता की मृत्यु के बाद केवल वह और माँ हैं कमरे में। यदि वह अलग जगह रहने की सोचता है तो बड़ी मुश्किलें हैं कमरा पाने में। यदि भोथरी संवेदनाएं माँ की मृत्यु की कल्पना करने लगे तो गलत नहीं होगा। जिन्दगी की इसी कशमकश में शरद अपने अंतर की लड़ाई में जीत नहीं पाता।

लेखिका ने झोपड़ियों की जिंदगी को भी अपनी कहानियों में उकेरा है। गरीबी और अतिशय गरीबी का रूप यहाँ पलता है। इसमें मजदूर, छुटपुट काम करने वाले, झाड़ू-पोछा आदि काम करने वाले लोग रहते हैं। कभी शहर में बनती इमारतों के आसपास निर्माण कार्य करने वाले मजदूरों की अस्थायी झोपड़ियाँ बन जातीं। इन झोपड़ियों का नारकीय जीवन लेखिका की संवेदना को झकझोरता है। इनमें बसने वाले स्त्री चरित्रों को उन्होंने करीब से देखा है। उन अनुभवों को, उनके जीवन की घटनाओं को कहानियों में इस तरह ढाला है कि वे पाठकीय संवेदनाओं को झकझोर देती हैं। इमारतों का निर्माण कार्य में लगे स्त्री-पुरुष दिन भर मजदूरी करते। उनके बच्चें दिन भर खेलते, रेत में घर बनाते। शाम को घूमने आने वालों से भीख माँगते। शाम को झोपड़ियों में नशा बोलता, मजदूरों के सिर चढ़कर। बच्चे बड़े होकर या तो इसी तरह मजदूरी करते या अपराध की दुनिया में खो जाते। पांडू, गनपत, बाबू पात्र इसी तरह की कहानियों में आए हैं। गुंडे बनकर झोपड़ियों की बसाहट में वर्चस्व की लड़ाई चलती। कल तक जहाँ बाबू का राज था, आज पांडु का राज हो जाता।

अभिशाप युक्त कहानी समाज की जड़ता, अंध विश्वास को आइना दिखाती है। मध्यवर्गीय परिवार की नीरजा माता-पिता के घर में अपशकुनी मानी जाती है। जब जन्म हुआ तो लाखों का नुकसान हुआ। पिता ने जहर खाकर जान दे दी। पाँच साल की हुई माँ पंगु हो गई। आस-पड़ोस और समाज ने मिलकर उसे अभिशापित मान लिया। नीरजा को कई बार माँ की आँखें पढ़कर लगा यह अभागी जन्मी तो सुहाग ही लुट गया।-उसके जन्म से जुड़े प्रसंगों को इतने पंख लगे कि लड़के वाले उसकी सुंदरता से तो मोहित होते किंतु बाहर की चर्चाएँ सुन इंकार कर देते। तीस पार होकर जब शादी के बाद ससुराल गई तो यहाँ फिर एक नए अंधविश्वास का सामना करना पड़ा। नीरजा के शुष्क होते जीवन में जब कोंपलें फूटीं तो पता चला बच्चा इस घर का अभिशाप है। उसके आने से पिता

का जीवन संकट में पड़ जाएगा। तीन पीढ़ियों से ऐसा होता आ रहा था। ससुराल-मायके दोनों मे पलते अंधविश्वासों में उसका जीवन अभिशापित हो गया था। आज के इस तकनीकी युग में इन अंधविश्वासों में जीना समाज की संकीर्ण दकियानूसी सोच है। एक ओर महानगर कर्म प्रधान है तो दूसरी ओर यहीं का मध्यवर्ग अंधविश्वासों को भी पोषित कर रहा है। नीरजा के लिए तो कठिन घड़ियाँ थीं ये। क्यों स्त्री को ही अभिशापित मान लिया गया। समझौतावादी मध्यम वर्ग का यह कुंठित चरित्र रचते हुए लेखिका ने उसकी आलोचना भी की है। 'पतझड़ के पत्ते' एक बने बनाए पुराने मिथक को तोड़ने हेतु रची गई कहानी है, किन्तु लेखिका उसे अनजाने में और पुष्ट कर देती है। एक माँ अपनी सौतेली बेटी को भरसक प्यार और ममता देती है किन्तु उसका पति इस प्यार-ममता को देख-समझ नहीं पाता। उसे हमेशा यही लगता कि उसकी बेटी को अपेक्षित स्नेह नहीं मिल पाता। वह अपनी पत्नी को डाँटता-फटकारता रहता है। नन्हीं शीला पिता का व्यवहार समझ नहीं पाती। पिता के साथ वह नई माँ को लेने गई थी। नई माँ बहुत अच्छी थी। उसे प्यार करती थी पर पापा को माँ पर कभी विश्वास नहीं हुआ। नन्हीं से भाई के आ जाने के बाद तो स्थिति बिगड़ती चली गई। माँ कहती रही-ङ्घआप रस्सी को साँप मत बनाओ, घर स्वर्ग बन जाएगा। अपने मन का संदेह निकाल दो। शीला के प्रति मेरे मन में कोई बुरा भाव नहीं। पापा के मन में सौतेली माँ का भूत सवार था। एक दिन माँ ने शीला को किचन से दूध लाने का क्या कह दिया पापा भड़क उठे। लड़की से काम करवाती हो फेल नहीं होगी तो क्या होगी? माँ ने लाख चाहा पर स्थितियाँ नहीं बदलीं। हताश माँ की पीड़ा को लेखिका के शब्दों में इस प्रकार अभिव्यक्ति मिली है, जो अमानवीय परिस्थिति में सहनशीलता की हद से बाहर जाकर अनजाने परिणाम तक पहुँचती है। -'यह कौन सी शिक्षा आप बच्चों को दे रहे हैं? घड़ी भर भाई को पकड़ा तो पढ़ाई खराब हो गई? आपने घर को नरक बना रखा है। न शांति से जीना चाहते हैं न जीने देते हैं। इस अशान्ति के वातावरण में बच्ची समय से पहले मुर्झा जाएगी। आपके इस व्यवहार से मेरा तो दिमाग खराब होता रहा है। ईश्वर के लिए बच्ची का भविष्य सोचिए। इसे आप होस्टल में डाल दें। वहाँ के शांत वातावरण में लड़की पढ़ भी सकेगी, यहाँ की रोज की कलह से दूर हो जाएगी। सौतेली माँ को लगा था यही वह रास्ता है जिससे पति का संदेह दूर हो सकता था। होस्टल की बात सुनकर आपे से बाहर होकर शीला के पापा के कहे गए शब्दों से सौतेली माँ अपना संपूर्ण धीरज खो बैठी। वह अपने इस घर में आने को सबसे बड़ा दुर्भाग्यत मान रही थी तभी उसके कानों में पिघले शीशे से शब्द उतरे -'अपने बच्चे को घर से बाहर फेंक सकोगी जैसे इसे फेंक रही हो? इसे घर से निकाल दो फिर चैन से रहना। लेखिका ने ममता की परीक्षा को भावनाओं में ऐसा बहाया है कि सहृदय पाठक उसके साथ-साथ बहने लगता है। स्त्री के सतीत्व की परीक्षा के प्रमाण तो मिलते हैं, किन्तु ममता की परीक्षा को और कहीं पढ़ा-सुना नहीं गया। सौतेली माँ का मिथक तोड़ने हेतु माँ अपने बेटे को गैलरी से फेंक देती है। उसकी ममता का चरम तिरस्कार बेटे की मौत में बदला। ममता के साथ बेटा खोया, बेटे के साथ जगत। सौतेली माँ अब मिथ्या जगत और उसके संदेह से परे पागलखाने में थी। जाते-जाते भी वह विश्वास दिलाना चाहती थी-मैं जरूर सौतेली माँ थी, पर मेरी ममता सौतेली नहीं थी। इस घटना के बाद शीला को होस्टल भेज दिया गया। एक घर बनते-बनते बिखर गया। सौतेली माँ के प्रति सामाजिक सोच ने

शीला के मन में इस तरह घर किया कि कालान्त में उसने अपने प्रेम का बलिदान कर पिता की तरह पतझड़ के पत्ते होने में विश्वास कर लिया। वास्तव में कैकेयी के मिथक ने सामाजिक सोच को इस तरह ग्रसित कर लिया है कि सदियों बाद भी सौतेली माँ की ममता पर प्रश्नचिन्ह लगते रहे हैं। प्रोफेसर वर्मा से शीला बहुत प्रेम करती है। जब उसे पता लगता है कि उनका एक बच्चा है, पत्नी उसे जन्म देकर मर मर गई तो वह सहम जाती है। उसे प्रोफेसर वर्मा का कहा एक-एक शब्द याद है - 'शीला, मैं पिछले साल से ही तुम्हें कुछ बता देना चाहता था पर हिम्मत न हुई। मेरी पत्नी एक बच्चे? को जन्म देकर मर गई। बच्चा मेरी माँ के पास है तुम्हारे जैसी कोमल हृदय को मैं नि-संकोच बच्चा सौंप सकूँगा।' शीला को लगा जैसे एक भूचाल आ गया। सब कुछ टूट गया। सामने सौतेली माँ का कातर चेहरा उभर आया। ममता से भरी मेरी उस माँ पर किसने विश्वास किया? अपनी सौतेली माँ के समान परीक्षा वह नहीं दे सकती। मन पर गहरा दवाब था माँ का। ममतामयी सौतली माँ के प्रति अपने पिता का व्यवहार उसके मन पर बार-बार दस्ताक देता। क्या प्रोफेसर वर्मा उसके अंदर की सौतेली माँ में ममता देख सकेंगे या उसका हश्र भी अपनी सौतेली माँ जैसा होगा। कमलेश जी ने संवादों के द्वारा इस कहानी में बिम्ब शब्द रचे हैं। इन्हीं के माध्यम से कहानी आगे बढ़ती है। सीधी-सहज भाषा में संवेदनाओं को गहरे घेरे में आबद्ध करती हुई कहानी चमत्कामरिक ढंग से अंत तक पहुँचती है। लेखिका निर्माण के साधनों का प्रयोग भी व्यावहारिक जीवन से जोड़ती नजर आती है। उनकी कहानी में ईंट भी एक प्रतीक बनकर आई है। वे कहती हैं, ईटों का प्रारब्ध यही होता है, जहाँ पड़ी है वहीं पड़ी रहेगी। या वे दीवार में चिनी जायेंगी जहाँ सीमेंट के पलस्तर से ढँक दी जायेंगी। दीवार में चिनी ईंट की स्वप्ना सुख-दुख के प्रतिघात से, अंतर के द्वन्द्व से नित्य मथित होकर भी जीना चाहती है। माता-पिता और प्रिय भाई की मृत्यु के बाद वह बिलकुल अकेली रह गई। उसका मानसिक द्वन्द्व विगत घटनाओं को स्मरण कर बढ़ता जाता है। प्रतिकार की हिम्मत उसने कभी जुटाई नहीं। अपनी समझौतावादी सोच ने उसे यथार्थ का वह आइना दिखाया जिसकी उसे कल्पना भी नहीं थी। उसका अदृश्य शोषण किया जा रहा था। उसके प्रति वह जागरूक नहीं थी। मध्यम वर्ग की पूर्व परम्परा के अनुसार अपना शोषण होते देखते रही और अंत में भी उसी तरह जीने को मजबूर है। सब कुछ समझ लेने के बावजूद स्वप्ना में निर्णय की क्षमता थी न साहस। स्थितियों को यथावत स्वीकार कर लेना ही उसकी नियति थी। आज की पढ़ी-लिखी लड़की का इस तरह का कदम आहत करता है। लेखिका को शायद मध्यीम वर्गीय समाज पर विश्वास नहीं है कि वह स्थितियों को बदलने के लिए विद्रोह करे अथवा आज भी लड़कियाँ इसी तरह मुखापेक्षी रहेंगी। स्वप्ना के बड़े भाई उसके विवाह के लिए नहीं सोचते क्योंकि संपत्ति उसके नाम है। वे सबसे कहते हैं स्वप्न विवाह करना नहीं चाहती, हम तो मना- मना कर थक गए। स्वप्ना की चल-अचल संपत्ति धीरे-धीरे उन्हों ने अपने और पत्नी के नाम कर ली। स्वप्ना अपने भटकते छोटे भइया का घर बसाना चाहती है। उसके साथ हर पल अन्याय होता है। उसके व्यक्तित्व, उसकी आस्था के परिस्थितियों ने टुकड़े-टुकड़े कर दिए। किसी से सुख-दुख कहने की इच्छा, किन्हीं आँखों की गहराई में अपना सुख खोजने की मनोकामना मृतपाय हो चुकी थी। अर्थ पर टिके संबंध कब तक टिके रहते? छोटे भैया पवन की असमय मृत्यु ने आखिरी रिश्ते की भी बलि ले ली। यह कहानी एक ओर स्वप्ना को,

उसकी वैचारिक स्थिति और मानसिक द्वन्द्व से हार मान लेने की नियति का कृष्ण पक्ष है, दूसरी ओर पवन जैसे नौजवान का व्यवस्था से लड़कर अपने लिए मुकाम बनाने की एक पश्त कोशिश है। मुंबई की फिल्मी दुनिया अभिनय और संगीत के अवसर देने के लिए कितनी चुनौतियाँ देती है। पवन को घर से भी पापा का साथ नहीं मिलता। उसे निकम्मा मान लिया जाता है। काम की तलाश में भटकता-भटकता वह अपने आप को भी भूल जाता है। कहीं छिट-पुट अवसर मिलता है तो कोई दूसरा हथिया लेता है। फिल्मी दुनिया की जगमगाती भीतर से सुरंग सी अंधेरी संकीर्ण गीली गली में उसके पैर धँसते गए। असफलताओं की उठती आँधी में भी नहीं डिगकर, एक दिन उनके गीतों को एक दिशा मिली। सफलता के सोपान मिले। इन्हीं दिनों उसे घर लौटना पड़ा और यह लौटना बहुत भारी पड़ा। एक बार अवसर हाथ से निकल जाए फिर दोबारा नहीं मिलता। पवन के साथ यही हुआ। बेइंतहा संघर्ष के बाद भी असफल रहा वह। भटकते-भटकते एक दिन फुटपाथ पर मृत पाया गया। बड़े भाई ने कभी मदद नहीं की। माता-पिता का आसरा तो पहले ही छिन चुका था। पवन की मौत, मुंबई भागकर फिल्मी दुनिया में काम की तलाश करने वाले नौजवानों को नैतिक सीख देती है। लेखिका ने अर्थ के साये में पलते बाजारवाद और बाजारवादी सोच के रिश्तों में प्रवेश करती मार्मिक कहानी लिखी है।

'घूमिल चित्र' में मुंबई में सतही संबंधों को ढोते रहने को विवश मालू का महानगर के जीवन से मोहभंग हो जाता है। वह सब कुछ खोकर अपने बाबा के साथ गाँव लौट आती है। मुंबई ने उसके भाई और माँ को लील लिया। कहाँ तो रुपए कमाकर वापिस लौट जाने की बात थी। पर पेट भरने के बाद बचता कहाँ था कि किराए के रुपयों की जुगाड़ हो जाए। वर्षों बाद कुछ रुपए जमा हुए। आशा जागी। अब गांव जाया जा सकता है। बाबा ने नन्हें मुन्ने को रुपए माँ को देने को कहा। दो वर्षीय मुन्ना रुपए को कागज समझ टुकड़े कर चूल्हे में डालकर नाचने लगा। अब तक वह कागज को फाड़कर चूल्हे की आग में डालकर ऐसा करता रहा है किन्तु इस बार माँ ने गुस्से में मुन्ने को मारा वह चूल्हे की तरफ गिरा, चूल्हा बिखर गया। मुन्ने को लेकर बाबा दौड़ता रहा दिनभर। घर लौटा तो देखा माँ भी ग्लानि में कुएँ में कूदकर दम तोड़ चुकी थी। मालू बहुत छोटी थी बाबा ने एक-एक घटना उसे सुनाई। आज मालू सब जानती-समझती है। पड़ोसी वृद्ध बाबा को उसकी बीबी असहाय स्थिति में छोड़, रुपए लेकर भाग गई। मालू के संवेदनशील मन में सारे रिश्ते तिरते नजर आने लगे। लखपति जो उसको पटा रहा था धन-पैसे के लालच में बूढ़े की स्त्री को लालच देकर ले गया। धन-पैसे छीनकर जाने उसका क्या हाल करे। वह बाबा को मनाती है, हम गांव लौट चलें। गांव में जैसे भी होगा रह लेगी। यही मुंबई का सच है। यहाँ रुपया ही सबसे बड़ा रिश्ता है। रुपए के नियमों से परिचालित समाज पूरी सभ्यता और संस्कृति को आक्रान्त कर रहा है। गांव के परम्परा पोषित लोग कैसे अपने संस्कारों को भूल जाएँ। बाबा भी गांव लौट जाने का निश्चिय करते हैं। मुंबई की दौड़ती-भागती जिंदगी में ऐसा बहुत कम होता है। रोजी-रोटी की तलाश में आए लोगों को मुंबई ऐसे जकड़ता है कि निकलना मुश्किल हो जाता है। कहानी गांव की सरलता और अपनत्व की ओर बार-बार लौटने का आग्रह है। गाँव भी विकास की दिशा में अग्रसर हो सकते हैं। बाजारवाद भले

ही यहाँ भी आकर ठहर जाए किन्तु मानवीय संवेदनाओं की जड़ें वह हिला नहीं सकता।

'खानाबदोश' का आत्माराम स्वार्थी, चालाक, कायर और घोर व्यक्तिवादी चरित्र है। उसके आसपास दिग्भ्र मित लोग मंडराते हैं। अपनी लच्छे दार भाषा से आत्माराम सबको बेवकूफ बना अपना भरण-पोषण कर लेता है। मुंबई में कितनी ही यूनियनें, राजनीतिक दल आये दिन आंदोलन, हड़ताल, कभी चुनावी सरगर्मियाँ। चुनाव के समय उसको अपनी जीभ का मूल्य मालूम हुआ। हर दल का कोई न कोई आ जाता। चलो भाई भीड़ इकट्ठी कर रोकना। तुम भाषण झाड़ना तब तक हमारे नेता पहुँच जायेंगे। अब वह फड़कते भाषण ही नहीं देता, नम्रता से, मृदुभाषा से मुस्कुराता हुआ, सफेद टोपी, कुर्ता-पायजामा पहने नेता का रूप धर घर-घर अपने नेता को कीमती वोट देने का निवेदन कर आता। कमलेश जी ने आत्माराम का शब्द चित्र इस तरह रचा है कि शब्द बोलते सुनाई देते हैं। आत्माराम हर दल जो उसे पैसा देता उसके लिए कह आता। पैसे हथिया लेता। उसे किसी दल विशेष का पक्ष तो लेना नहीं था। चालों में थोड़े काम करवा देता। दल अपनी जगह खुश, गरीब अपनी जगह खुश। मुंबई में बोली जाने वाली हर बोली उसकी जुबान में कैद थी। एक बार किसी सशक्त नेता के विरोध में खूब रुपया लेकर कह आया। कोई आकर उसे दबोचे इसके पहले मुंबई छोड़ कस्बे की तरफ निकल आया। छोटे शहरों में घूमता, मिल एरिया में पहुँच जाता मजदूर नेताओं से मिलता। किसी हड़ताल या समझौते की स्थिति भाँपता फिर धीरे से वहाँ घुस जाता कहीं कुछ बात नहीं बनती तो मजदूरों की बस्ती में पहुँच जाता जोरदार भाषण देता। किसी को नेता चुन फण्ड इकट्ठा करता। भविष्यों के सपने दिखाता। अपना भविष्य किसे देखना था? उसे तो वर्तमान जीना था। छल से कपट से या प्रपंच से जब लोग इतने बेवकूफ हैं, समुदाय का समुदाय उसके भाषण का दीवाना है तो वह फायदा क्यों उठाए नहीं? रुपए, रोटी, कपड़ा, सब मिल जाता है, फिर क्या चाहिए इंसान को? उसकी पॉकेट भरी रहती। कुछ बस्ती का काम करता फिर आगे की राह चुनता। पैसे लेकर किसी को गाली दे आता। किसी को धोखा देना उसके बांये हाथ का खेल था। धूर्त तो वह था ही। उसके संगी-साथी उसको गुरु मानते थे। हर नये गांव, शहर में उसका नाम होता। युवावस्था में रुपए के साथ तन की भूख भी मिटाने लगा। कहीं टिककर कहाँ रहा वह? गांव, कस्बा, नगर, महानगर छोड़ता रहा ..... बसता रहा।

किसी कस्बा की गरीब बस्ती के वृद्ध के घर डेरा डाला। उसकी जवान लड़की गोमती से शादी करना पड़ा। जब पता चला गोमती गर्भवती है, फिर भाग गया। बरसों बाद मुंबई आया किसी मित्र के साथ हँसी-ठट्ठा कर रहा था तभी मजदूरी करती एक स्त्री ने देखा। वह अपनी लड़की की अंगुली पकड़कर आत्मा राम के पास आई -'गोमती हूँ, अपनी बच्ची को पहचाने।' आत्माराम तनिक ठहरा फिर दुत्कार कर भगा दिया -'जाने किसका कलंक मेरे साथ मढ़ती है, बेवकूफ बना रुपया ऐंठती होगी, धन्धा अच्छा है। गोमती आत्माराम को धिक्कारती है- 'झूठे मक्कार तेरी जीभ में कीड़े पड़ें। शादी करके छोड़ आया। मजदूरी करके अपना पेट भर रही हूँ। तेरी तरह किसी को छलती नहीं, गरीब हूँ पर इज्जत है।'

पूरी कहानी फ्लैश बैक में चलती है। आत्माराम टाटा कैंसर अस्पताल में इलाज के लिए आया है। डाक्टर ने उसे जीभ का कैंसर बताया है। खानाबदोश आत्माराम अपनी जीभ को कोसता बैठा है। पूरी कहानी संवेदनाओं के बहाव में धीरे-धीरे बहा ले जाती हैं। बचपन का गांव आत्माराम को पूर्वजों की परम्परा से जोड़ता है। आखिर गुण तो कहीं न कहीं पैतृकता से जोड़ते हैं। आत्माराम ने भी अपने दादा-चाचा से विरासत में पाया है लच्छेहदार बोलना। 'बोलों' का बड़ा महत्व है। किसी को बना देते हैं, किसी को मिटा देते हैं। लेखिका नेताओं के जीवन और उनकी शैली पर तीखे व्यंग्य करती है। इस कहानी को राजनीति की कहानी कहना अधिक उचित होगा। इसमें राजनेताओं के चरित्रों को आत्माराम के जीवन से जोड़कर देखना चाहिए। बिना किसी लाग लपेट के परिवेश में यथार्थ पक्ष बड़े ही स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत किया गया है। लेखिका आसपास की दुनिया में, उसकी जटिलताओं में न तो उतरती है और न उनका साक्षात्कार कराती है। जीवन के यथार्थ से अलग एक व्यक्ति के स्वार्थी जीवन को घटना दर घटना बढ़ाती, यह स्वार्थ के जटिल संसार में घुसने, उसके रहस्यों, उसके कपट को बाहर लाने की सार्थक पहल है। लेखिका भाग्य, प्रारब्ध और आह पर भी विश्वास से भरी है, तभी आत्माराम दण्ड भी पाता है।

अस्सी के दशक से लेखन करती आ रही कमलेशजी का यह महानगर की प्रतिनिधि कहानियों का संग्रह उनके सहअनुभवों के रचनात्मक दबाव के कारण स्त्रियों एवं उनके जीवन की अलग-अलग स्थितियों सोच को प्रकट करता है। इस संग्रह में सभी कहानियों में प्राय: स्त्री ही नायिका है। कहीं वह अपने सम्मान के लिए, परिवार को ऋणमुक्त करने को जूझती है। रुपा ऐसी ही पात्र है। अपने पिता के कर्ज को चुकाने हेतु वह तन बेचती है, फिर तन त्याग भी देती है। आत्मीय रिश्ते भी जब बिखर जाते हैं तब रूपा को विवश होकर इस अमानुषिक दुनिया से मोह तोड़ देना पड़ता है। काठ होती औरतें केवल जीना है इसलिए जीती हैं। भावनाशून्य, स्पंदन रहित जीवन ही उनका भाग्य है। गोरी धोबन और काली धोबन अपना नाम ही भूल चुकी हैं। कथ्य प्रधान इस कहानी में परिवार में ठुकराई गई ये धोबिनें अपने जीवन को कर्म से जोड़कर, संघर्ष के साथ बहा ले जाना चाहती हैं। कमलेश जी की कहानियाँ शिल्पगत प्रभाव भले ही कम डालें किन्तु उनके कथ्य की रोशनी में दया, क्रोध, आक्रोश, स्नेह, प्रेम, उपेक्षा, निराशा सभी एक साथ पलते हैं। यथार्थ उनमें है, किन्तु ये यथार्थ केवल विद्रूपता नहीं हैं। उसमें भी मनुष्य होने की आशा है। विकट परिस्थितियों में जीते हुए भी उनके पात्र पलायनवादी नहीं हैं। केवल रूपा और दलदल कहानियों को छोड़ दिया जाए तो सभी पात्र अंत तक संघर्ष करते हैं। सभी कहानियाँ महानगरीय जीवन की अंतर्धारा में प्रवाहित होती है। इस जीवन से उनके पात्र ऊब भी गए हैं तो भी राकेश-स्वाती की तरह दौड़ते रहते हैं। छोटे-छोटे संवाद कहानी को गति देते हैं। लेखिका के अनुभव और संवेदना की तरंगें हर कहानी में जान डालती हैं। पाठक स्मृति के अंतिम कोने तक पहुँच जाता है। शब्दों के पार एक ऐसा सन्नाटा उभरता है जो सीधे हृदय पर दस्तक देता है। कहानी के सभी आंदोलनों के परे, पाश्चात्य संस्कृति की छाया से दूर, सामाजिक परिवर्तनों से अंजाना एक वर्ग जो झोपड़ियों में रहता है, चालों में जीवन बिताता है, उस वर्ग की महानगरीय जीवन की त्रासदी को व्यक्त करती हैं कमलेशजी की कहानियाँ। एक ही गति से

चलती हुई, बौद्धिकता से परे, एक ही साँचे में ढली ये कहानियाँ कई-कई कथ्यों को समेटे हैं। आठवें दशक की कहानियाँ जब परिवर्तन को गले लगा रही थीं, उपभोक्तावादी संस्कृति जड़ जमा रही थी, सभ्यता की यात्रा में कहानी रूप, शिल्प बदल रही थी तब कमलेशजी ने निम्न मध्यवर्गीय उन परिवारों से कथ्य उठाया जो अमानुषिक जीवन स्थितियों में संघर्ष कर रहे थे। स्त्री का आर्थिक संघर्ष घुटन, वेदना, संत्रास निराशा, छटपटाहट आदि सब कुछ है इन कहानियों में। धार्मिक और आध्यात्मिक स्थितियाँ कहीं भी नहीं हैं कथ्यों में। मनुष्य होने के लिए समाज के मध्य उत्पन्न विसंगतियाँ इतनी हैं कि उसका बना रहना ही प्रमुख है। व्यक्ति के अंदर के द्वन्द्व बाहरी परिवेश से जोड़कर लेखन में उतारना कौशल की माँग करता है किन्तु जब वह अनायास ही आता है तो अनुभव की सत्यता, प्रामाणिकता को सिद्ध करता है। समाज के साथ जीने, उसके भीतर की तह पाने के बाद इन कहानियों को प्रस्तुत किया गया है। ये कहानियाँ मनोरंजन के लिए नहीं वरन एक ऐसे समाज का प्रतिबिंब हैं जो एक सही राह चुनने की अपेक्षा करता है, किन्तु राह नहीं मिलती। कमलेश जी की महानगरों की कहानियाँ विरोध करने की एक अपरिचित सी धीमी ध्वनि के साथ मंथर गति से चलती दिखाई देती हैं। ये कहानियाँ संघर्षों को सहज लेती हुई जीवन को आस्था से जोड़ती हैं।

३२०, इन्द्रपुरी, इंदौर
विभागाध्यक्ष, हिन्दी,
श्री अटल बिहारी शासकीय कला
एवं वाणिज्य महाविद्यालय, इन्दौर
(मध्यप्रदेश)

# समस्याओं और संघर्षों पर दृष्टि : कमलेश बख्शी

**डॉ. रीता दास राम**

कहानियाँ समाजिक घटनाओं और मानवीय रिश्तों का शाब्दिक दृश्य होती हैं। आदर्शवादिता को खारिज करती कहानियाँ अनुभूति की कसौटी के कथ्य और सत्य का संयोजन करती हैं। अनुभव की ग्राह्यता और वैचारिक दृष्टिकोण के समावेश से नए आयाम रचती हैं। कहानी में व्यक्ति चेतना का महत्वपूर्ण स्थान होता है। व्यक्ति के संदर्भ से समाज को देखना यही लेखकीय दृष्टि है। कहानी अपने समय के सामाजिक गुण-दोषों का साक्ष्य होती है। कहानियाँ तत्कालीन समय के धार पर तटस्थ चलने की हिम्मत हैं।

लोककथाओं से निकली पाश्चात्य प्रभावों को छूती कहानियाँ आज समाज की यथार्थ घटनाओं, समस्याओं और संघर्षों पर सटीक दृष्टि डालती हैं। हर पहलुओं पर मनन करता साहित्यकार समाज सुधारक सी दृष्टि से पूर्ण समाज के लिए एक बेहतर मार्ग प्रशस्त करता दिखाई पड़ता है। दृष्टि महीन, गंभीर, नवीन, सटीक और भेद्य न हो तो समयानुसार खारिज हो जाती है। कहानी में लेखकीय सत्य बोलता है। अनुभव की अपनी सीमा है। कल्पना की उड़ान फिसलन भी पैदा कर सकती है। लड़खड़ाती कहानी मुँह के बल खुद ही नहीं पूरे लेखक को गिरा सकती है। कहानियों का प्रभाव सत्य घटनाओं के परिदृश्य को स्पर्श कर कला और शिल्प से गुजरता चरित्र, वातावरण, कथानक और कार्य प्रधान होता है। लेखक का लक्ष्य, उद्देश्य, परिस्थितियों से संबन्धित पर दृष्टिप्रधान होता है। बदलाव हर युग की दास्तान कहता है। उपेंद्रनाथ अश्क के शब्दों में-ह्नदृष्टि बदली, मानव और जीवन को देखने के ढंग बदले तो कहानी का शिल्प भी बदला। पहले की-सी कथानक प्रधान झटका देने वाली और मधुर टीस उत्पन्न करने वाली, गठी-गठाई कहानियों के बदले जीवन की गहमागहमी, रंगारंगी, कटु-यथार्थता, जटिलता-संश्लिष्टता का प्रतिबिंब लिए हुए, सीधे-सादे स्केच की सी, निबंध की सी, संस्मरण या यात्रा-विवरण की सी, कुछ प्रभावों अथवा स्मृतियों का गुंफन मात्र; वर्णनात्मक, चित्रात्मक, डायरी के पन्नों अथवा पत्रों का रूप लिए हुए, एक ओर लोक कथा और दूसरी ओर उपन्यासों की हदों को छूती हुई तरह-तरह की कहानियाँ लिखी जाने लगी है।(हिन्दी कहानियाँ और फैशन, उपेन्द्रनाथ अश्क, पृष्ठ ११३) समाज में विरोध का स्वर तीव्र है। परंपरागत मूल्यों को अस्वीकार किया जा रहा है। आधुनिकता के साथ नवीनता को स्वीकारना शोध है। स्थितियों और खंडित मनस्थितियों के चित्रण घोर निराशा और संबंधहीनता दर्शाते हैं। लेखिका समस्याओं के बीच जीते हुए क्षणों और प्रसंगों का मूल्य पहचानना जानती है।

कमलेश बख्शी जी की कहानियाँ सामाजिक मार्ग प्रशस्त करती हैं। नई धारा को आत्मसात

करते हुए परिस्थितियों, माहौल और समय का मूल्यांकन करती हुई चेतना शून्य नहीं होती बल्कि नवीन संभावनाओं को जीती हैं। लेखिका समसामयिक समाज के पात्रों को उठाकर कहानी के द्वारा सीधे-सपाट अपनी बात कहती है। परेशानियों और जद्दोजहद को चित्रित करती, दुखों को शब्द देती है।

ब्राह्मणवाद को जीती संग्रह की पहली कहानी 'संस्कार का संकट' ब्राह्मण संस्कारों में पली मालती की कहानी है। मालती चाह कर भी नीची जात के महेश को जो उसका पति है, विवाह उपरांत सच पता चलने पर दिल से अपना नहीं पाती और स्वर्ग सिधार जाती है। सूखते चमड़े की बू, जानवरों की लाशें, जानवरों की चीख, उसके लिए दहशत भरे हादसे हैं किन्तु समाज का एक बड़ा वर्ग इसी पर अपना पेट-परिवार पालता है। यह सच्चाई उसके लिए हृदय-विदारक होती है। विवाह के बाद अचानक सामने आई सच्चाई से वह टूट जाती है। बचपन के संस्कार उसके पैरों की बेड़ियाँ होते हैं जबकि परिस्थितियाँ कुछ और ही कहती हैं, गाँव का एक ठाकुर था। उसने गाँव की एक लड़की का शील भंग किया और शहर में बेच दिया। ... पंडित ने मंदिर की असली मूर्ति बेच नकली रख दी। मंदिर की चार दीवारी में जुए होते थे। साधुओं द्वारा चरस-भांग यहाँ वहाँ बेची जाती थी। (पृष्ठ-१२) उच्च वर्ग के लोग भी नीच हरकत से बाज नहीं आते। धर्म और छुआ-छूत एक दिखावा है। जरूरत और स्वार्थ सिद्धि के समय इंसान बस इंसान रह जाता है। मालती मरते समय जान जाती है कि समाज में सब बराबर है। कोई ऊँच-नीच नहीं। छुआ-छूत की कुरीतियों पर कटाक्ष ही नहीं आईने की तरह सच्चाई को पेश करती कहानी संस्कार का संकट परवरिश में मिलते संस्कारों से लड़ती ऐसी औरत की कहानी है जो चाहते हुए भी संस्कारों से अलग नहीं हो पाती। यह कहानी बदलाव के नए परिदृश्य की ओर ध्यान खींचती है और समाज को सीख लेने के लिए प्रेरित करती है।

समाज पर खोजपूर्ण एक मर्मस्पर्शी दृष्टि है कहानी पानवाली। एक गरीब अनाथ औरत को अपनी जिंदगी का गुजारा बड़े मुश्किलातों से गुजरते हुए करना पड़ता है,का जिक्र लेखिका इस कहानी में करती है। कहानी का एक पात्र भैया पानवाली की कहानी जो सुनाई हुई आपबीती है, हम तक पहुँचाता है। संवेदनाओं, जख्मों से पूर्ण घटनाएँ मन को उद्वेलित करती हैं, भिखारी अफीम खिला छोटे बच्चे को कपड़े पर डाल देते। मक्खियाँ भिनकती रहतीं और दयालु लोग पैसा डाल जाते ... जिंदे काक्रोच बच्चे की आँखों पर रख पट्टी बाँध बच्चे को डाल देते। काक्रोच पाँव मारता। बच्चा चीखता तो कहते उसकी आँखें दुख रही है दवा को पैसे नहीं। एक दिन जबर्दस्ती किसी ने आँखें खुलवाई तो उसमें से दो काक्रोच निकले तथा बच्चे की ऊपरी पलक जख्मी थी। खून रिस रहा था। खरीदे बच्चे जो होते हैं। (पृष्ठ-२२)समाज की नग्न सच्चाई वीभत्स होती है। एक अनाथ अपनी जिंदगी कितनी तकलीफों से जीता है। समाज कितना एक अनाथ का होता है, यह कहानी बयान करती है। दया, ममता, मायामोह जानवरों में भी होते हैं। मनुष्य अपनी बुद्धि के प्रयोग से कई प्रपंच रचता है। रिश्ते बनाता है। अकेला जीवन जानवरों के सान्निध्य से भी संतुष्टि पाता है। जानवरों में भी साथ खोज लेता है। यह अनुभूति व्यथा का उत्कर्ष है। समय का सदुपयोग और अंत तक जीवन

काटना या गुजारना जरूरी है जिसे मौत कहते हैं। यह सारगर्भित मसला है जो कहानी का मूल बिन्दु है। जीने का आधार में लेखिका एक ऐसे अध्यापक की कहानी कहती है जो जिंदगी भर उम्दा शिक्षक की भूमिका निभाते हैं किन्तु जब कान से सुनाई नहीं देने की समस्या बढ़ जाती है तो अपमानित होते हैं। यह कहानी अशोक जैन जैसे कई बधिरों की तकलीफ को सामने रखती है, जिनके लिए इस तकलीफ से जूझते जिंदगी बोझ सी लगने लगती है। कहानी कहती है खराब समय सबकी परीक्षा लेता है। कसता है, गढ़ता है, भीतर से तोड़कर जोड़ता है। मजबूत बनाता है। यह सब इंसान की आत्मशक्ति के बल पर संभव होता है। इंसान अपनी परिस्थिति से युद्ध लड़ता है। हारता है। कुंठित होता है। अपमान पीता है। एक दिन उसी अंधेरे से किरण की रोशनी फूटती है और उसका समय बदलने लगता है। अशोक जैन अपनी वैचारिक दृष्टि और लिखने की क्षमता को पहचान लेते हैं और पढ़ा न पाने की असमर्थता को तज लेखन के कार्य को अपना लेते हैं। एक सलाह सर! आप लिखते क्यों नहीं? (पृष्ठ-३२) उन्हें बदल कर रख देता है। कहानी का यह एक सकारात्मक पक्ष है।

मानवीय रिश्ते समाज की महत्वपूर्ण इकाई होते हैं। रिश्ते में संदेह रिश्ते को पतझड़ के पत्ते की तरह सुखा देता है। शक का कोई समाधान नहीं होता। संदेह व्यक्ति को सही-गलत का फैसला भी करने नहीं देता। संदेहग्रस्त व्यक्ति स्वयं तो बेचैन रहता ही है किसी और पर भी विश्वास नहीं कर पाता। शीला के पिता दूसरी शादी तो कर लेते हैं पर दूसरी औरत में अपनी बच्ची शीला की माँ नहीं ढूँढ पाते। पिता के दिमाग का संदेह का कीड़ा नई पत्नी पर विश्वास नहीं कर पाता। नई पत्नी द्वारा बच्ची के लिए किए गए हर कार्य में प्रश्न उठाते हैं। वे नई माँ को हर पल सौतेली माँ होने का तंज सुनना पड़ता है। नई माँ बच्ची शीला और अपने बच्चे में कोई फर्क नहीं करती पर पिता नई माँ पर विश्वास नहीं कर पाते। रोज की किच-किच से बच्ची पर कोई मानसिक तनाव न पहुँचे यह सोच कर नई माँ बच्ची को हॉस्टल में रखने का सुझाव देती है और पिता अपने शब्द रोक नहीं पाते, अपने बच्चे को घर से बाहर फेंक सकोगी। जैसे इसे फेंक रही हो? इसे घर से निकाल दो फिर चैन से रहना। (पृष्ठ-३९) इन शब्दों का नई माँ पर ऐसा असर होता है कि वे अपने बेटे को बालकनी से नीचे फेंक पागल हो जाती है। यह घटना शीला को जीवन भर के लिए झकझोर देती है और वह अपने प्रेमी वर्मा जी की दूसरी पत्नी बनना सिरे से खारिज कर देती है। सौतेली माँ के रिश्ते की हार शीला, शीला के पिता और नई माँ के जीवन को अपनी जड़ों से दूर सूखे पीले पड़ चुके पतझड़ के पत्ते सा बना देती है।

'कर्ज चुग गया' कहानी वाकई समाज का एक भद्दा चेहरा है। लोग बेबस व्यक्ति का हर हाल में फायदा उठाने से नहीं चूकते। रूपा एक अनाथ बच्ची है जो माता, पिता भाइयों के मरने के बाद अनाथ हो जाती है। परिवार के किसी सदस्य का उसे साथ न होने के कारण हर व्यक्ति उसका फायदा उठाना चाहता है। रिश्तेदार उस पर एहसान तो करने को तैयार होते हैं पर साथ में अपना फायदा सोचने लगते हैं। रूपा अपने पिता का कर्ज उतारने के लिए हर तरह से शारीरिक और मानसिक प्रताड़ना सहने के लिए प्रस्तुत होती है और समाज के तथाकथित इज्जतदार लोग अपने फायदे के लिए उस मासूम का इस्तेमाल करने से भी बाज नहीं आते। समाज में पसरा लालच,धूर्तता और भ्रष्टाचार भोले भाले इंसान को भी उस भट्टी में झोंक देता है, जहाँ वह जाना नहीं चाहता। रूपा जिस

कार्य को करने के लिए मजबूर हो जाती है। वह कार्य उसे पतन की गर्त में ले जाताहै। वह सोचती है, यह क्या किसी कोठे से कम है? बाबा बाबा फोटो में मुस्कुरा रहे थे? गुनाह तुम्हारा प्रायश्चित मैं कर रही हूँ। कब तक? और कब तक? (पृष्ठ-५०)

आखिर इस घृणित कार्य से मौत को गले लगाकर रूपा मुक्त हो जाती है। जबकि उसके सगे मामा उसे मुक्त करने आते हैं। उनके सहयोग से वह कर्जमुक्त हो जाती है पर मामा के बारे में अंजान ही रह जाती है। उसी तरह भूरी गरीब अनाथ बेघरों की जिंदगी का यथार्थ चित्रण है। गरीबी इंसानियत को भी ताक पर रख देती है। भाई-भाई को लूटता है। आपसी रिश्तों की कदर एक सीमा तक ही होती है। अन्यथा सभी मनुष्य हैं। अपना गला काटकर कोई किसी के लिए कुछ नहीं करता। भूरी के आसपास संबंधित पात्र सामाजिक और पारिवारिक रिश्तों को संभालते अपनी जिंदगी जीते हैं। रिश्ते नाजुक मोड़ पर टूटते हैं। बिखरते हैं। फिर भी संभलते हैं। समाज में इज्जत, मान-सम्मान की परवाह दूध-मुंहे बच्चे की बलि देकर भी की जाती है। उसके लिए जेल की सजा भी जैसे कोई मायने नहीं रखती। समाज की ऐसी सच्चाई पारिवारिक मान-मयार्दा की भी धज्जियाँ उड़ाती है। माँ से संबंधित पुरुष शंकर, बेटी से संबंध रखता है। आगे चलकर बेटी से शादी भी कर लेता है। बेटी के इस संबंध को खत्म करने के लिए और लोक-लाज की खातिर बेटी की अवैध संतानों को माँ खत्म करती जाती है। बेटी से चिढ़ती है। कुढ़ती है। अंतत: स्थिति को स्वीकार लेती है। प्यार के रिश्ते कैसे-कैसे मुठभेड़ों से आगे बढ़ते हैं, पढ़कर हैरानी होती है। लेखिका का मुख्य उद्देश्य निम्नवर्गीय दुनिया में रिश्तों की तहों से पाठकों को रूबरू कराना ही है।

समाज में बेरोजगार युवा वर्ग के जिंदगी के संघर्ष और व्यथा को प्रस्तुत करती कहानी 'कटु यादें कभी न आएँ' ऐसा उदाहरण है जो माता-पिता की बच्चों के प्रति जिम्मेदारी पर प्रश्नचिह्न अंकित करती है। साथ ही अति आशावादिता के कारण बच्चों में तनाव, बच्चे का बेघर होना, भटकना, गैरों से सहारे की याचना भरी बेचारगी से गुजरना, आदि दुष्परिणामों की ओर दृष्टि डालने पर विवश करती है। बच्चे को अपने परिवार से सुरक्षा और सुविधा या सहूलियत पाने का पैदायशी हक है। प्रशांत पिता द्वारा घर से निकाल दिए जाने पर जीवन के उस मोड़ पर आकर खड़ा हो जाता है जहाँ से कई रास्ते दिखाई पड़ते हैं। उसकी मासूम बुद्धि कई जद्दोजहद से गुजरती है। ऐसी स्थिति में बच्चे के बिगड़ जाने या पथभ्रष्ट हो जाने पर माता-पिता बराबर के जिम्मेदार होते हैं। बच्चे से भविष्य में अति सफलता की उम्मीद करने की अपेक्षा बच्चा जितना सक्षम है, जैसा है, उसे सहज बनाए रखना और उसके लड़खड़ाते कदमों का सहारा बनना, यही माता-पिता का बच्चों के प्रति दायित्व होना चाहिए। यही लक्ष्य भी।

उलझनें और समझौता कहानी वैवाहिक रिश्तों के लिए एक सीख है। पति-पत्नी एक दूसरे पर निर्भर होते हैं। दुख या खुशी आपस में बाँट कर ही रास्ते तय किए जा सकते हैं। बच्चे की कमी संबंध की नींव हिला देती है। विनोद और नीलम शादी के बाद खुशहाल रहते हैं। बच्चा न हो पाने की विनोद की शारीरिक अक्षमता को नीलम झेल नहीं पाती और उदासी से भरी घर से चली जाती है। पति-

पत्नी का सहयोगपूर्ण साथ ही इस रिश्ते को जीवन दे सकता है। यही इसकी सफलता है। किसी एक की कमी पर तकरार कर अलग हो जाना या समझौते के साथ जीवन की तलाश करना निहायत निजी फैसला होता है जिसे समझने और स्वीकारने में समय तो लगता है। नीलम भी इसे समझने में अपना समय लेती है। सहेली पूनम शराबी-जुआरी पति से बच्चा पैदा नहीं करना चाहती बल्कि बच्चा गोद लेना चाहती है। बच्चा गोद लेने के विषय में नीलम अपने विचार रखती है, गोद लिया बच्चा भी कैसे मालूम होगा कि अच्छे माँ-बाप की संतान है। अनाथालय में ऐसे ही बच्चे आते हैं। अपने रिश्ते का बच्चा लो तो वह भी बड़ा होकर माँ-बाप की तरफ झुक जाता है। ... विवाह जुआ, संतान जुआ, सब जगह जुआ। (पृष्ठ-७९) बच्चे की कमी के बावजूद अंतत: नीलम अपने वैवाहिक जीवन में मिठास ढूँढ लेती है।

अभिशप्त कोठी निचले दर्जे के भ्रष्टाचार का दृश्य प्रस्तुत करती है। मानवता को ताक पर रखकर इंसान स्वार्थी और भोगी बन जाता है। किसी भी हद तक गिर जाना जैसे कोई बात ही नहीं होती। कहानी में नारायण का भिखारियों से मजदूरों सा काम कराना, बिना पैसे दिए हंटर मार कर भगा देना, चोरी के माल का गलत तरीके से अपने फायदे के लिए प्रयोग कराना आदि बातें चित्रित की गई हैं। नारायण दोस्तों के साथ मिलकर स्वार्थ में अंधा हो गलत रास्ते अपना कर अपने सपने को पूरा करता है। फिर उन्हीं दोस्तों से उसी मिल्कियत को खो भी देता है। बेटी की शादी के लिए दोस्त करोड़ीमल से पैसे लेता है। मकान और जमीन हथियाने का यह अच्छा मौका करोड़ीमल हाथ से जाने नहीं देता। नारायण पैसे नहीं चुका पाता। करोड़ीमल कोठी खाली करवा लेता है। खुद रहने नहीं आता- न मरम्मत, न संभाल। न किरायेदार मिलता है। खाली पड़ी कोठी की दीवारों में दरारें आ जाती हैं जिसे लोग गरीबों की आह से जोड़ना शुरू कर देते हैं। इस प्रकार कोठी वीरान हो जाती है।

नैतिकता, जागरूकता, सामाजिक सरोकार को जीवन का उद्देश्य बनाते इंसान की कहानी आंटे की चक्की एक जीवन संदेश है। विनोद मजदूरों को सही दिशा दिखाते, उनके हक के लिए लड़ते, उनकी जीवन के बेहतरी के लिए आवाज बनते, अपनी जीवन की छोटी खुशियों का त्याग करते मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। नीलम सहिष्णुता को सहेजे संयम और संतुष्ट जीवन जीते विनोद का इंतजार मन में बसाए रह जाती है। उसे जिंदगी अब अकेले गुजारनी है। विनोद की मौत के बाद पेपर में छपते उनके किए कार्य की प्रशंसा और स्तुति नीलम और बेटे मुकुल को शक्ति देते हैं। लेखिका एक ओर ऐसी आदर्शात्मक कहानी लिखती है तो दूसरी ओर मूक प्रश्न द्वारा बलात्कार जैसे विषय पर अपनी लेखनी चलाती है। लेखिका जिसे मूक प्रश्न कहती है समाज में पुरुष का बलात्कारी वाला वह जानवर रूप है जो वीभत्सता बोता, मानवता को भेदता, पुरुष को नर और औरत को मादा साबित करता है। जिसका क्रूरता से जवाब देना औरत को कटघरे में खड़ा करता है। उसका जीता जागता उदाहरण फूलन देवी है जो ऐसे ही हादसे का शिकार बन दस्यु जीवन जीने पर मजबूर हुई। इन सबके मूल में सामाजिक, नैतिक जागरूकता ही सही जवाब है। जनमानस का वैचारिक और मानसिक स्तर उन्नत और प्रगतिशील होना जरूरी है। अन्यथा समाज और हर देश क्षत-विक्षत होता रहेगा। दंगे, आंदोलन और युद्ध में बहुतायत से प्रयोग में लाया जाने वाला

बलात्कार कर्म दुश्मन हो या दोस्त, उसके सम्मान को कुचल कर रख देता है। वैसे इन दंगे और आंदोलनों से देश का भला नहीं होता।

कहराता शहर में आंदोलन को चित्रित किया गया है। अमीर घर में बैठ तमाशा का ब्यौरा पढ़ते हैं। गरीब के घर चूल्हा जलना भी मुश्किल हो जाता है। नेता भाषणबाजी से उन्माद पैदा करते हैं। उत्तेजित जन-समूह मार-काट तोड़-फोड़ पर उतर आता है। लेखिका कहती है, आंदोलन के मुद्दे की शुरूआत तो अपने घर से करनी चाहिए। भ्रष्टाचार रोकना है तो अपने घर के धंधों में अति मुनाफे को कम करें। पत्थरबाजी, आगजनी, दुकानें बंद करने से देश का भला नहीं होता। इस मामले में सबसे बुरा असर गरीब जनता पर पड़ता है। जो रोज कमाती है। आवेश में आई भीड़ समिति का झण्डा नहीं देखती। न भला-बुरा सोचती है। जिस नेता के भड़कीले भाषण से शहर में उन्माद फैला था, मानव शक्ति बहुत ताकतवर है। तुम लोग एक होकर आजाद देश में बढ़ रही मँहगाई, भ्रष्टाचार, कालाबाजारी के विरुद्ध आवाज उठाओ ... अब अहिंसा का युग नहीं है समय बदल रहा है। (पृष्ठ-१११) उसी नेता के कार पर पत्थर फेंक उसे जख्मी कर दिया जाता है। शहर हादसों और घटनाओं से भरा मानवीय जख्मों से कराह रहा होता है।

लेखिका कमलेश बख्शी अपने जीवन अनुभवों और वर्तमान समय की घटनाओं से अभिभूत होती रही हैं। सामाजिक उथल-पुथल से दहलता समय उनकी कहानियों से होकर गुजरता है। संदेशी दादा आजादी के समय में हालात का बयान करती है। देश की आजादी के लिए लोगों ने अपने परिवार के सदस्यों की कुबार्नी दी। सारा देश स्वतंत्रता की लड़ाई में खून की होली खेल रहा था। इस बात का हर एक को गर्व था। समाज देश भक्तों की स्तुति गाता था। संदेशी दादा ऐसे समय में स्वतंत्रता के लिए लड़ते स्वतंत्रता सेनानियों के गुप्त पत्र को पहुँचाने का कार्य करते थे। समय के क्रूर होने पर भी उन्होंने अपनी बीवी को खोया। बच्चे की कुबार्नी दी। पर राज को राज रखा। वे मिसाल बने। कोई तमगा न मिला। पर दिल से हिन्दुस्तानी थे। अपने काम पर गर्व करते थे। लेकिन आज स्थिति बदल चुकी है। आज उनके पोस्ट ऑफिस में पोस्टमैन का काम करते लड़के इस काम को छोटे काम का दर्जा देते हैं। आगे बढ़ना चाहते हैं। उन्नति की सीढ़ियाँ चढ़ना चाहते हैं। समय के साथ प्राथमिकता बदल जाती है। यही समय की माँग है और कहानी का कथ्य।

बचपन के संस्कार कभी जाया नहीं जाते। समाज में युवा वर्ग जो घर से भाग कर बड़ों की मर्जी के खिलाफ शादी करता है दुर्घटना कहानी इसी समस्या के इर्द-गिर्द घूमती है। यह समस्या नैतिकता जैसे उद्देश्य से होते हुए सामाजिक विचारों को बदल नए विचारों का इंतजार करती नजर आती है। सावित्री की बेटी घर से कहीं चली जाती है। भागती नहीं। माता-पिता अपने द्वारा दिए गए संस्कारों पर प्रश्न उठाते हैं। कहानी का अंत ज्योति को खरी साबित करता है। वह नरेंद्र के साथ खुद भागना नहीं चाहती थी बल्कि उसकी बुरी नजर का शिकार हो जाती है। नरेंद्र उसे पिस्तोल के बल पर जबर्दस्ती भगा ले जाता है। रास्ते में नरेंद्र, उसका दोस्त, ज्योति सभी दुर्घटना का शिकार हो जाते हैं। मौत से पहले अपने बयान द्वारा ज्योति अपने माता-पिता से बचपन में मिले संस्कारों को कलंकित

होने से बचा लेती है। कई लड़कियाँ सही होते हुए भी हादसे का शिकार होकर अपने को साबित नहीं कर पाती होंगी। यही वैचारिक दृष्टि बदलनी होगी। अपने विचारों का सम्मान करें। निडर रहें। आत्मसम्मान के साथ जिएँ।

'जो कहूँगी सच कहूँगी' कहानी संवेदना से भरी उस माँ की व्यथा है जिसने कई मन्नतों और इंतजार करते हुए सात लड़कियों के बाद एक बेटा जना था। बेटा संस्कारहीन निकला। दुराचार से युक्त था। एक दिन माँ ने बेटे को पड़ोस से गहने चोरी कर लाते और छुपाते देखा। माँ स्वाभिमानी थीं। पुलिस में रिपोर्ट कर बेटे को पकड़वा दिया। अपनी सारी कमजोर करती भावनाओं और ममता को किनारे रख वह कोर्ट में सिर्फ सच कहना चाहती है। यह सत्य के प्रति अडिग रहने का संकेत है। लेखिका कहानी में एक औरत और माँ के जजबातों का बयान पूरी बारीकी से करती है। उसके मानसिक उतार-चढ़ाव की पड़ताल भी दर्ज करती है। कहानी की नायिका कई बार टूट कर पुन: जुड़ती हैऔर सच का रास्ता प्रशस्त करती है। यह समाज की नारी है जो एक जीवन में कई बार जन्म लेती है और कई बार मरती है।

'जो कहूँगी सच कहूँगी' कमलेश बख्शी का १९७८ में निधि प्रकाशन, दिल्ली से आया यथार्थ को छूता समाज की सही तस्वीर पेश करता कहानी संग्रह है। जिसमें पंद्रह संवेदनशील कहानियाँ हैं, जो लेखिका के तत्कालीन सामाजिक हालात को बयान करती हैं। सत्तर-अस्सी का दशक यथार्थ कहानियों का रहा। लेखिका यथार्थ बोध से जुड़ी सच्चाईयों और बदलते समय को नोट करती चलती है। उनकी दृष्टि अपने आस-पड़ोस में जीते रिश्तों पर भी पड़ी है। कहीं वे बेटे के लिए माँ के दर्द को उकेरती हैं तो कहीं पानवाली के जीवन से जुड़ती हैं। पति-पत्नी के संबंधों पर भी लेखनी चलाती लेखिका अपनी बात कहती है। बांगला देश की स्थापना के समय की लड़ाई का चित्रण करती है। आजादी के दर्द को भी वे स्वर देती हैं। जटिलता या वक्रोक्ति को जगह न देते हुए सीधे-सरल शब्दों में वे अपनी बात रखती हैं। कहानियों में गरीब पिछड़े आम-आदमी के संघर्ष हैं। आर्थिक संकट की तकलीफ को दर्शाया गया है। वर्ग-भेद और उच्च वर्ग के जुल्म भी लेखिका की नजरों से बच नहीं पाते। लेखिका भारतीय दिल रखती है और नारी के दर्द को पूरी शिद्दत से बयान करती है। इन कहानियों की औरत कहीं भी मजबूर नहीं होती। अपने आप से लड़ती है और लड़ाई सतत जारी रखती है। आक्रोश शब्दों में है पर क्रूरता से संयम को जरूरी समझती है। संस्कारहीनता बर्दाश्त नहीं करती। सामाजिक, धार्मिक, कुंठाओं, घृणाओं और कुप्रथाओं पर प्रश्न उठाती है। सदभाव का चिंतन करती कहानियाँ संस्कृति एवं मानव धर्म का पोषण करती हैं। कहानियों के परिदृश्य में लेखकीय सरोकार का विस्तार और गहराइयाँ है।

कवयित्री, मुंबई.

# स्त्री के सामाजिक यथार्थ से परिचय कराती : मर्यादा

**डॉ. अर्चना दुबे**

शक्ति स्त्री का ही पर्यायवाची है परंतु वर्तमान में स्त्री की सामाजिक स्थिति आज भी शोचनीय है। आज जहाँ विश्व स्तर पर नारी विजय-परचम लहरा रही है, वहीं सामाजिक व पारिवारिक हिंसा का शिकार बन रही नारी भी विद्यमान है। उसी तरह जहाँ नारी को देवी, ममता, दया, करुणा, सहनशीलता का रूप माना जाता है, वहीं हमें नारी छल, कपट, कटुता, विद्रोहिणी रूप में भी परिलक्षित होती है।

कथाकार कमलेश बख्शी वर्तमान हिन्दी कहानी की एक ऐसी लेखिका हैं जिनकी कहानियों में नारी के विविध रूप देखे जा सकते हैं। इनकी कहानियों में नारी पात्र अपनी अलग-अलग विशेषताओं के साथ सामने आते हैं। कहीं ये पात्र बहुत मजबूत और कहीं बहुत कमजोर नजर आते हैं। बख्शी जी के कहानी संग्रह मर्यादा में बीस कहानियाँ संग्रहित हैं। इन कहानियों में चित्रित नारी सामाजिक व पारिवारिक समस्याओं का सामना करती है, उनसे जूझती, लड़ती हुई तो कहीं समझौता कर घुटने टेकती भी दिखाई पड़ती है।

बख्शी जी की कहानी 'बे गड्डी चढ़ गई' की मुख्य नारी पात्र बे एक विशिष्ट चरित्र के साथ सामने आती है, जो जीवनपर्यंत परिस्थितियों से समझौता करती है। बे अपने पति द्वारा लायी गई सौतन को भी बड़ी सहजता से स्वीकारती है और सौतन के मरने के बाद उसके बच्चों को भी प्रेम से अपनाती है। पति की अंतिम अवस्था तक उसकी सेवा भी करती है। इतना ही नहीं सौतन के आने पर वह स्वेच्छा से हवेली छोड़कर उसके पीछे के हिस्से में रहने लगती है और वहीं से हवेली का सारा करोबार संभालती है। इस दौरान भूलकर भी हवेली में पैर नहीं रखती। यहाँ तक कि आँख में फुंसी होने की खबर भी पति तक नहीं पहुँच पाती, न दवा-दारू ही करती है जिसके चलते वह अपनी एक आँख भी गँवा बैठती है। परंतु बे ने न कभी जीवन से शिकायत की न अपने पति से। पति जब दूसरी पत्नी की मृत्यु के पश्चात उसे दुबारा हवेली में वापस लेने आता है तब उसकी यह हालत देखकर कहता है- बोल न भाग, सौतन के बच्चों को भी तुमने गले लगा लिया, इतना अन्याय तेरे साथ हुआ फिर भी तू ने उफ्फ नहीं की! मैं शर्मिंदा हूँ। अब लौट चल अपनी हवेली में...। बख्शी जी की यह नारी पात्र कहीं भी अपने अधिकारों के लिए आवाज उठाती नहीं दिखती है। लेखिका शायद भारतीय समाज की उस नारी को बे के माध्यम से अभिव्यक्त करना चाहती है जिसने अपने ऊपर होनेवाले असंख्य अत्याचारों के विरुद्ध कभी मुँह नहीं खोला। हमारे उत्तर भारत में एक कहावत कही जाती है बेटी और गाय एक समान होती है जिसे किसी भी खूँटे से बाँध दो वो बँध जाती है और

कटने को तैयार रहती है। इसी तरह बे भी अंत तक अपने पत्नी धर्म व मातृ धर्म का पालन करती है।

इसके विपरीत 'शृंग से सागर' कहानी की सोना बद्रीनाथ में रहने वाली गरीब पहाड़ी कन्या है जो अपनी सुंदरता और भोलेपन के कारण अपनी दादी के साथ दर्शन करने आए अपूर्व का दिल जीत लेती है और वह उसकी ओर इतना अधिक आकर्षित होता है कि परिवार के विरुद्ध जाकर सोना से विवाह कर उसे घर ले आता है। सोना शहर में आकर यहाँ की सुख-सुविधाओं और चकाचौंध की ओर तो बखूबी आकर्षित होती है लेकिन अपने गाँव की मिट्टी और यादों को नहीं भुला पाती। वह शहरी फैशन व तामझाम को तो अपनाती है पर सभ्यता नहीं अपनाती। अपूर्व के कहने पर भी वह न पढ़ना चाहती है न सभ्य बनना चाहती है और न ही ससुराल के रीति-रिवाजों व रहन-सहन को अपनाना चाहती है। वह अपनी सास और पति की इच्छा के विरुद्ध ही कार्य करती है। इतना ही नहीं वह ससुराल में भी झगड़ पड़ती है और सबसे कटी-कटी रहती है। धीरे-धीरे उसकी महत्त्वाकांक्षा बढ़ती चली जाती है और परिवार के विरुद्ध जाकर अपने घर में काम करने वाले पहाड़ी नौकर के साथ खूब हँसती-बोलती है और उसे चोरी-चोरी घर पर भी बुलाती है। अंत में वह इसी पहाड़ी नौकर के साथ सारे गहने-पैसे लेकर भाग जाती है-'कुछ दिन बाद ही रसोई में सोयी आया को बाहर से कुंडी बंद कर वह गहने कपड़े ले भाग गई।' यह कहा जाता है कि पुरुष ही महिला को छलता है परंतु आज महिलाओं का भी एक ऐसा वर्ग बन गया है जिनके द्वारा पुरुष को प्रताड़ित किया जाता है, छला जा रहा है।

इसी तरह 'जिंदगी का एलबम' की नायिका केटी ब्राउनी अविवाहित माँ और एक स्वच्छंद नारी के रूप में सामने आती है। केटी ब्राउनी एक विदेशी महिला है जो कि चकाचौंध की जिंदगी में जीनेवाली एक भटकी हुई लड़की है। भौतिक संसाधनों के पीछे भागनेवाली यह लड़की अपनी अनर्गल इच्छाओं, लालसाओं और वासनाओं को पूरा करने के लिए तथा जिंदगी का मजा लूटने के लिए कसीनों में काम करने लगती है और वहाँ की रंगीन दुनिया और चकाचौंध के प्रभाव में आ जाती है- साथ की अनुभवी लड़की ने सलाह दी, आनंद लूटो-कइयों के साथ घूमो फिर एक को चुन शादी कर लेना और अल्हड़ केटी उसमें बहने लगी। इस बीच वह गर्भधारण कर लेती है और न्यूयार्क के होम फॉर अनमैरीड मदर में जाकर बच्चे को जन्म देती है। आज स्त्रियाँ अधिक पैसे के लालच, अति महत्त्वाकांक्षा, स्वच्छंद व अत्याधुनिक जीवनशैली के चलते लगातार पथभ्रष्ट होती चली जाती हैं। परिणामस्वरूप एक दिन बिना लाइसेंस वाले जिप्सी ड्राइवर द्वारा उसकी हत्या कर दी जाती है।

एक और कहानी 'क्षितिज' भी विदेशी पृष्ठभूमि पर ही आधारित है। इसकी नायिका पैम अपने प्रेमी जैरी के साथ सुनहले भविष्य के सपने बुनती है। जब दोनों के माता-पिता को पता चलता है तो वे असहमति जताते हैं- पैम के माँ-बाप कहते हैं- कुछ समय और एक-दूसरे को समझो। अभी बहुत छोटे हो- पैम पहले तुम नौकरी ढूँढो। हम इस उम्र में शादी के पक्ष में बिल्कुल नहीं हैं। माता-पिता के बार-बार मना करने के बावजूद भी जैरी और पैम लिव इन में रहने लगते हैं और कुछ दिन

बाद ही विवाह कर लेते हैं। जैरी के साथ विवाह के बाद कुछ दिन में ही पैसे की तंगी होने लगती है। जैरी चाहता है कि पैम भी कोई नौकरी करे पर इसी बीच पैम गर्भवती हो जाती है। जैरी अपनी आर्थिक स्थिति देखते हुए पैम पर गर्भपात के लिए दबाव डालने लगता है। फिर भी पैम बच्चे को जन्म देती है और इस वजह से जैरी पैम से चिढ़ने लगता है। अपने बच्चे से भी वह नफरत करने लगता है। जैरी अब पैम और बच्चे को अपनी प्रगति के पथ पर बाधा मानने लगता है और वह अपने साथ काम करनेवाली धनवान लड़की के करीब होने लगता है। रोज-रोज के कलह से तंग आकर पैम बच्चे को लेकर कुछ दिन के लिए अपनी सहेली के घर रहने चली जाती है। यह सोचकर कि शायद बच्चे और उसकी गैर-मौजूदगी में पति को उनकी कमी का एहसास हो लेकिन जब वह लौटकर आती है तो वह पाती है कि पति सब कुछ बेचकर, घर में ताला लगाकर वहाँ से हमेशा-हमेशा के लिए चला गया है। पैम को सदमा सा लगता है और तभी उसकी नजर दीवार पर लगे 'शेल्टर फॉर होमलेस वुमन' के पर्चे पर पड़ती है। वह उस पते की ओर बढ़ जाती है। इस कहानी के माध्यम से लेखिका ने भावनाओं में बह जानेवाली लड़की का चित्रण किया है जो जीवन में सही निर्णय नहीं ले पाती।

आजीवन त्याग व अंतर्मन से लड़ती मर्यादा कहानी की नायिका अंजली जो एक वेश्या है और सेठ अविनाश ठाकुर के हाथों बेच दी जाती है वह बचपन से ही इस धंधे से घृणा करती है और मन में एक परिवार की आशा लिए है कि कोई उसे अपनी पत्नी बना के पारिवारिक जिंदगी देगा। परंतु यथार्थ के सामने अपने सपनों को बिकता देखती है। अब वह सेठ की रखैल बनकर रहती है पर उसके मन में एक उम्मीद है कि वह उसे भले ही पत्नी न माने पर पत्नी का प्रेम और आदर दे, सेठ बैठकर साथ समय बिताए, बातें करे। सेठ केवल उसे भोग्या के रूप में लाया था- वह रखैल है... रखैल... किसी की पत्नी नहीं-उसने अपना सिर दीवार से टिका दिया - वह केवल भोग्या है। इसलिए तो वह लायी गयी है, खरीदी गयी है-अच्छी रकम देकर। वह जिद कर एक बच्चा पैदा करती है। तत्पश्चात चाहती है कि सेठ उस बच्चे को पिता का नाम दे पर वह न उसे अपना नाम देता है न ही उसकी बीमारी में पिता का कोई फर्ज अदा करता है-उनका नाम बच्चे के साथ नहीं जुड़ सकता। क्या लोग जानते नहीं - ऑफिस वाले -उनके बच्चे - पत्नी - कौन नहीं जानता - बच्चा उनका है। अंजली के गर्भावस्था से लेकर बच्चे के पैदा होने तथा उसके बीमार होने तथा एक पैर में लकवा मारे जाने जैसी सभी विकट परिस्थितियों में सेठ का ड्राइवर त्रिलोचन ही अंजली और उसके बच्चे का ध्यान रखता है। वह पूरी कहानी में एक पिता और पति का कर्तव्य पूरा करता नजर आता है परंतु जब वह अंजली के समक्ष सब कुछ छोड़कर उसकी पत्नी बन जाने का प्रस्ताव रखता है तथा उसके बच्चे को अपना नाम देना चाहता है- तब अंजली उस प्रस्ताव को अस्वीकार कर देती है क्योंकि वह सेठ द्वारा खरीद कर लाई गयी है और सेठ की इच्छाओं को पूरा करना ही अपना कर्तव्य मानती है, नहीं तो वैश्याओं का कोई धर्म-ईमान नहीं होता, यही सोचा जाएगा-ङ्घनहीं-नहीं-त्रिलोचन कभी न आना-मुझे मयार्दा निभानी है-फिर तुम्हारे गंगाजल की जिंदगी में कीचड़ नहीं डालूँगी-कभी-नहीं। इसलिए वह अपने गृहस्थ और भविष्य के सुखमय जीवन की तिलांजली दे देती है।

इस कहानी की अंजली उन औरतों का प्रतिनिधित्व करती है जो लोगों द्वारा आजीवन शोषित होती हैं। भोग्या बनकर जीती हैं और भोग्या रूप में ही मर जाती हैं। समाज में ये कभी सम्मान की जिंदगी नहीं पाती बस एक विशेषण बनकर रह जाती हैं।

एक मुलाकात की नायिका जो दूसरी औरत के लिए अपने पति द्वारा त्यागी एक तलाकशुदा औरत है जो एक छोटी सी नौकरी कर अपने दोनों बच्चों सुधीर और सुनीता का पालन-पोषण करती है। बच्चे जब बड़े होते हैं तो अपने अभावग्रस्त जीवन और पिता के आलीशान और शानो-शौकत की तुलना करते हैं और माँ से कहकर वहाँ रहने चले जाते हैं- जहाँ तक वह सोचती है - पितृस्नेह से कहीं अधिक पिता के ऐश्वर्य, वैभव ने खींचा होगा उसे रोना नहीं चाहिए - बच्चे बड़े हो गये हैं। वे अब स्वयं निर्णय ले सकते हैं। परंतु पिता के घर सब कुछ होकर भी प्रेम और संस्कार का अभाव पाते हैं। सौतेली माँ, सौतेले भाईयों द्वारा अपमानित होकर डरे सहमे से बच्चे अपनी माँ के पास फिर अपने घर वापस लौट आते हैं- एक मुलाकात ने हमारी आँखें खोल दीं - चमकने वाली सभी चीजें सोना नहीं होतीं - हम सच ही पापा के ऐश्वर्य से आकृष्ट थे - लेकिन वह आकर्षण रेत की दीवार-सा ढह गया। कहानी में नायिका माँ का चरित्र उभरकर सामने आता है जो अपने उजड़े गृहस्थ जीवन में से अपने मातृत्व का रंग भरती है और अपने पति के बाद इन बच्चों को खो देने के डर से संपूर्ण जीवन संघर्ष करती है। इस कहानी में नारी आत्मविश्वासी महिला के रूप में सामने आती है और पुरुष समाज को चुनौती देती है कि एक नारी भी स्वयं के बल पर अपना जीवन निर्वाह कर सकती है। इसी क्रम में वह माँ के कर्तव्य का भी निर्वाह करती है और बच्चों को अच्छा नागरिक बनाने का भरसक प्रयास करती है।

वहीं नियति कि राधिका जो बचपन से पूरे परिवार की जिम्मेदारी अपने कंधों पर उठाए रहती है और फिर प्रशांत जो जीवन में असफल इंसान है और बड़ा संगीतकार बनना चाहता है, उसे सफल होने में पूरा सहयोग करती है परंतु प्रशांत विवाह के उपरांत अपनी महत्त्वाकांक्षा के पीछे राधिका को नजरअंदाज करने लगता है। वह घर में होकर भी अपने आपको परित्यक्ता पाती है। शिकायत करने पर जवाब में पति से नाराज क्यों होती हो। जिनकी गोद सूनी है, उससे पूछो। एक तो दो-दो बच्चे से गोद भर दी ऊपर से...। धीरे-धीरे प्रशांत परिवार से पूरी तरह कटता गया और बाहरी दुनिया में रमता गया इतना ही नहीं बच्चे की बीमारी हो या राधिका की, वह कमरे में झाँकने तक न जाता। अंत में राधिका उसे छोड़कर बच्चों के साथ मायके चली जाती है-ङ्कशायद हम एक दूसरे को पहचान नहीं पाये थे। हमारे रास्ते एक नहीं थे। मैंने एक घर को चुना था - तुमने विस्तृत दुनिया के खेल का प्रांगण चुना। एक साल बाद प्रशांत नींद की गोली खाकर आत्महत्या कर लेता है। इस कहानी में बख्शी जी ने उस नारी का चित्रण किया है जो पुरुष की महत्त्वाकांक्षा के सामने हार जाती है पर टूटती नहीं।

दूसरा बनवास की बसंती अपने पियक्कड़ पति गनपत के हाथों आए दिन बुरी तरह पिटती, मार खाती और फिर भी खिलखिलाती रहती-ङ्कअगो बाई मेरे को बहुत हँसी आती थी - दाँत तुड़वाकर अकल आई। दूसरों के घर झाड़ू-पोंछा करती और बेटे और पति का पेट भरती पर जीवन में सुख का

मुँह न देखी। पति के मरने के बाद सास, ननद और उसके बाद बेटा भी केवल दु:ख ही देता है आजीवन जूझती है। बेटा भी बड़ा होकर पियक्कड़ निकल जाता है ये काम नहीं करेगा, सकल तो बाप जैसी अकल भी वही है। कल पी आया... य पूरी जिंदगी नरक सी रही उसकी पति के साथ भी जीवन वनवास सा कटा है और फिर बेटा बड़ा होगा तो जीवन में सुधार की उम्मीद लिए जीती रही, पर जब वह भी पिता जैसा ही निकलता है तो उसे लगता है जैसे नरक खत्म ही नहीं हुआ अपितु दूसरा बनवास शुरू हो गया-'बची जिंदगी भी नरक हो गयी - मेम साहब - मेरा नसीब देखो... मेरा वनवास कटा लगता है। बारह साल बाद फिर वनवास मिल गया - दूसरा वनवास।'

इस कहानी के माध्यम से बख्शी जी ने मुंबई के उस वर्ग विशेष का चित्रण किया है जहाँ महिलाओं द्वारा पुरुष पलता है और महिला मेहनत करती है, मार खाती है, पुरुष आजीवन प्रताड़ित करता है और आगे जाकर बच्चे भी उसी राह पर चल पड़ते हैं।

'आश्वस्त' कहानी की नायिका अपने मंदबुद्धि बेटे के लिए पूरी कहानी में संघर्ष करती नजर आती है। जब उसे पता चलता है कि बच्चा मानसिक रूप से कमजोर है वह दूसरे बच्चों से अलग है और वह कभी ठीक नहीं हो सकता तो वह भीतर ही भीतर टूटकर रह जाती है। बच्चा मंदबुद्धि है इसके लिए भी माँ को ही दोषी नजरों से देखा जाता है, बाद में एक बेटी भी होती है रीटा। उसे पढ़ने के लिए हॉस्टेल में भेज दिया जाता है जिससे थॉमस की बीमारी का शिकार उसे न बनना पड़े। सास-ससुर व पति का बर्ताव हमेशा रूखा रहता है-'सास-ससुर का और पति का कठोरता से कह देना - उसे अंदर ले जाया करो जब कोई आये तो। उसे समझ न आता बच्चे का मंदबुद्धि होने में उसका क्या कसूर है।' पति पीटर ने थॉमस की उपस्थिति को अपने जीवन में अस्वीकार कर दिया था। थॉमस की बीमारी और गड़बड़ियों की खीझ पत्नी पर उतारता। वह थॉमस की देखभाल और चिंता में चार दीवारी में सिमटकर रह जाती है। वह अपने बेटे थॉमस को स्वावलंबी बनाने का संकल्प लेती है और धीरे-धीरे जब थॉमस समझदारी की बातें करने लगता है, ग्रीटिंग काड्र्स बनाता और खुद बेच भी आता दुकानों में हर रविवार, अकेले चर्च जाता और आ जाता तो माँ आश्वस्त होने लगती है कि उसके पंद्रह वर्षों की मेहनत सफल हुई-'वह फिर किरणों की डोर थामे आकाश तक पहुँचने के सपने देखने लगी।' इस कहानी में लेखिका ने एक आशावादी महिला का रूप चित्रण किया है जिसकी आशावादी विचारधारा और मेहनत का ही प्रतिफल है कि उसका मंदबुद्धि बालक स्वावलंबी बन जाता है।

गुनाहों की जिंदगी में तीन बेटियाँ रीता, गीता, मीता हैं जो अपने गैर जिम्मेदार पिता के द्वारा शोषण का शिकार बनती है। यह कहानी पत्र के प्रारूप में लिखी गयी है। यह पत्र मीता अपने पिता को लिखती है जो जिंदगी के गुनाहों से हार चुकी है और इस गुनाहभरी जिंदगी में ढकेलने का श्रेय उसके पिता को जाता है। वह अपने पिता से बेहद घृणा करती है और उस पिता को यह पत्र, क्रोध, क्षोभ व घृणा के भाव से लिखती है। पिता घर के प्रति और अपनी बेटियों के प्रति अपनी जिम्मेदारी का बिल्कुल निर्वाह नहीं करता। उसके फक्कड़ व्यक्तित्व के कारण उसकी बेटियों की जिंदगी खराब

हो जाती है। बड़ी बेटी अपने से दोगुना पुरुष के साथ भागकर विवाह कर लेती है तो गीता अपने ससुराल में तीन पीढ़ी की भोग्या बनकर रह जाती है और मीता डाकुओं के गिरोह में फँस जाती है और डाकुओं की सरदार बन जाती है। इस कहानी में गैर-जिम्मेदार पिता के कारण बेटियों की जिंदगी प्रभावित होती हैं।

इस प्रकार कथाकार कमलेश बख्शी जी ने अपनी कहानियों के माध्यम से समाज में व्याप्त स्त्री के विविध चरित्र का चित्रण बड़ी ही सजगता से किया है।

सहायक व्याख्याता
वी.जी. वझे केलकर महाविद्यालय, मुलुंड

---

'समीचीन' के लिए शुभकामनाओं सहित

**श्रीमती सुनीता गुप्ता**

हिंदी विभागाध्यक्ष
एल. एस. रहेजा कॉलेज
सांताक्रुज (पश्चिम),
मुंबई-४०००५४

# अमेरिकी जीवन का यथार्थ : 'सावधान! ब्रिज आइस्ड है'

**डॉ. चित्रा मिलिंद गोस्वामी**

कमलेश बख्शी ने अमेरिका प्रवास के दौरान प्राप्त अनुभवों का विवेच्य कहानी संग्रह में यथार्थ वर्णन किया है, जिसके केंद्र में वहाँ का नारी जीवन ही है। विदेशी जीवन में भी स्त्री-पुरुष संबंध, रिश्ते-नाते, उत्सव-पर्व, जीवन के उसूल, अकेलापन, तलाक, बच्चों का पालन, जरूरतें, नौकरी आदि बातें शामिल रही हैं, लेकिन कहानीकार के अनुसार संवेदनशीलता, पुरुषों का अहंकार एवं स्वार्थ-भावना पूरे विश्व में एक जैसी दिखाई देती है। माँ होने की स्त्री की ललक, बच्चों से प्रेम, पति के लिए त्याग की भावना, टूटना, फिर परिवार के लिए संभलना सभी बातें देश बदलने से नहीं बदलतीं। भारत से अमेरिका जाकर बसने वाले लोग भले ही वहाँ के निवासी हो जाते हैं पर अगली पीढ़ी को बिगड़ते-बदलते या रफ्तार से चलते नहीं देख पाते। इस कहानी संग्रह की हर कथा संवेदनशील, हलचल पैदा करने वाली तथा सोचने को विवश करती है। इसकी स्वीकारोक्ति लेखिका ने स्वयं की है। 'उन दिनों मुझे यही लगता रहा दुनिया के किसी भी कोने में चले जाओ पुरुष का अहंकार-स्त्री का शोषण एक-सा है।' (दो शब्द)

'सुख-दुख प्रदेश' कहानी में अमेरिका यात्रा के दौरान भारतीय स्त्री को आने वाली दिक्कतों का वर्णन किया गया है। मन घर की ओर खिंचता है और अमेरिका जाने की मजबूरी है। वहाँ की एक बात सराहनीय है कि अमेरिका की एक ही लेन में भारत पाक मॉरीशस, वियतनाम आदि कई देशों के लोग अपने बंगलों में एक साथ रहते हैं किंतु हर घर की अपनी अलग कहानी होती है। संबंधों में शिथिलता यहाँ के जीवन की आम बात है। इसीलिए अपनों की कमी खलती है। नासिरा ने बच्चे को जन्म दिया था वह अपनी माँ की याद में रोती रहती है। मिस्टर जॉनसन की बूढ़ी माँ के बीमार होने पर भी उसकी पत्नी छुट्टियाँ मनाने जाना चाहती है। बेटा माँ और पत्नी की इच्छा के बीच फँस जाता है। वह माँ को ठीक हो जाने पर उसके घर छोड़ता है और पत्नी बच्चों को लेकर घूमने जाता है।

अमेरिका में अगर पत्नी का वेतन अच्छा हो तो पुरुष यहाउस हसबैंड बनना सहर्ष स्वीकार कर लेता है। तलाक अधिक होते हैं स्त्रियाँ स्वतंत्रता माँगने लगी हैं और पुरुष के अधिकारों की रक्षा के लिए भी सवाल उठते हैं। कश्मीर की साजिदा बर्फीले मौसम में मायके को याद करके रोती रहती है। पति द्वारा उसे कश्मीर भेजने की तैयारी करने पर वह बच्चों की तरह खुश हो जाती है। अमेरिका में पति-पत्नी का एक-दूसरे के लिए सरप्राइज भी अजीब रहता है। कमलेश जी लिखती हैं, सुबह पत्नी ने पति से कहा यशाम को सरप्राइज दूँगी और रात को फोन करके बताया कि 'उसे तलाक चाहिए।' अमेरिका में प्रेम विवाह हो या अरेंज्ड मैरिज, तलाक लेना आसान है और लोग तुरंत दूसरा विवाह

भी कर लेते हैं।

कुछ भारतीय लोग कभी-कभी स्नेह और अपनापन भी देते हैं। न्यूयॉर्क में रहने वाला मोहन कमलेश जी का पड़ोसी था, जो अब अमेरिका में रहने लगा था। उसके माँ-पिता गुजर चुके थे। कमलेश जी को उसने माँ की जगह दे दी और अमेरिका घुमाता रहा। अपने मित्रों का घर आना आठ दिन के लिए बंद कर दिया। कैसीनो ले जाता रहा, फिर पार्टियों में और खुशी से कहता, अपनी माँ को अंग्रेजी बोलना आता है।

'सावधान ! ब्रिज आइस्ड है शीर्षक-कथा में माँ-बाप के स्नेह से वंचित और अनाथ आश्रम में पली बढ़ी सोफिया की कथा है जो १६ वर्ष की उम्र में नौकरी, शिक्षा सब संभालते हुए एक साथ महमूद और जॉर्ज दोनों को पसंद करने लगती है, पर महमूद से प्यार करते हुए शादी करना चाहती है। शादी से पहले महमूद उसके सामने मुस्लिम धर्म स्वीकारने की शर्त रखता है। खुले विचारों की सोफिया उसे घर से निकाल देती है और अकेली रहकर जॉर्ज को खत लिखती रहती है। ऐसे में लक्ष्य विहीन जीवन जीना कठिन हो जाता है। ब्रिज आइस्ड होने की सूचना मिलने पर भी वह गाड़ी की स्पीड बढ़ा देती है और कार स्लिप हो जाती है। इस दुर्घटना में वह जान दे देती है। अनाथालय में पढ़ने वाले बच्चों की मन:स्थिति का मार्मिक चित्रण इस कहानी में हुआ है।

'ग्लेशियरी चट्टान' तलाक से पीड़ित, अकेलेपन की शिकार और बच्चों की जिम्मेदारी निभाने वाली सोफिया की दृढ़ता और संघर्ष का बयान करती है। सोफिया के तीन बच्चे हैं। शादी के बीस साल पूरे होने के बाद भी पति दूसरी लड़की के साथ घूमता है। वह पूरी लेन में अकेली घर में रहती है। टी.वी. की आवाज बढ़ा कर वह अपना अकेलापन दूर करने का प्रयास करती है। गारबेजवाले के आने से या कुत्तों के भोंकने से गली का सूनापन दूर होता है किंतु वह हार नहीं मानती। वह कंप्यूटर कोर्स करती है। गली के बैंक में रात की नौकरी मिल जाती है। वह घर का जिम्मा उठा लेती है। रात भर काम और दिन में बच्चों की देखभाल करते हुए शाम का खाना एक साथ हो जाता है। नौकरी करने की वजह से वह खुद को आत्मविश्वास भरी और चट्टान की तरह मजबूत महसूस करती है। भारत हो या अमेरिका तलाक के बाद बच्चों की जिम्मेदारी स्त्रियों पर ही रहती है और भविष्य की चिंता उसे सताती रहती है।

'प्रिय एन' कहानी लॉरेंस द्वारा अपनी प्रेमिका 'एन' को लिखा पत्र है जिसे वह एन तक पहुँचाना चाहता है ताकि जीवन के सायंकाल में उसे एकाकीपन से छुटकारा मिले। लॉरेंस की जिंदगी में तलाक शुदा एन का आना और निकटता बढ़ती जाना संयोगवश हुआ था। सिलविया और एन के बीच फँसा लॉरेंस पागल सा हो गया था। और अस्पताल में भर्ती करवाया गया था। ऐसी स्थिति में एन उसे छोड़कर चली गई थी। पर सिलविया ने धीरज और प्रेम से उसे संभाला था। सिलविया की मृत्यु के बाद एक बार फिर लॉरेंस एन से मिलना चाहता है।

'घर रेत' का नहीं कहानी की बारबरा अत्यंत जिम्मेदार पत्नी और माँ है। वह पति ग्रेब्रियल को

डॉक्टर बनाना चाहती है। आठ सालों तक पति और दो बच्चों का सारा खर्च उठाती है। ताकि ग्रेब्रियल के डॉक्टर बनने के बाद उसे सारा सुख मिल सके। डॉक्टर बनकर ग्रेब्रियल बारबरा से लगातार अंतर बनाए रखता है। एक दिन टेबल पर उसे ग्रेब्रियल द्वारा लिखी चिट्ठी मिलती है। जिसमें उसने तलाक माँगा था और अपनी दूसरी शादी का प्रस्ताव रखा था, थोड़े समय के लिए बारबरा हैरान हो जाती है। जो स्त्री-पति और घर के प्रति सर्वस्व अर्पण करती है, उसका फल अगर पुरुष द्वारा तलाक है तो वह टूट सकती थी। परंतु बारबरा जैसी स्त्रियाँ फिर से अपने-आपको मजबूत बना लेती हैं।

इसी तरह यकल और आज कहानी भी अविनाश जोगिया और जोसेफ द्वारा छली जाने वाली लॉवरेन डेफी की कथा है। माँ-बाप के प्रेम से वंचित बेबी सिटिंग में रहने वाले बच्चों की मन: स्थिति की कहानी है। साथ ही हाउस हसबैंड के रूप में अपने अहम् को त्यागकर पत्नी की कमाई पर जीवन जीने वाले पुरुष भी अमेरिकी समाज के ही अंग हैं। अमेरिकी समाज में जहाँ स्त्री-पुरुष संबंधों में तलाक की समस्या बहुतायत में है और वे कभी भी पारिवारिक संबंधों की परवाह किए बिना एक दूसरे से अलग हो जाते हैं। उसके विपरीत भारतीय संस्कार पारिवारिक संबंधों को निभाने में विश्वास रखता है। यहाँ तक कि अमेरिकी समाज में भी कुछ लोग इन संस्कारों का पालन करते हैं। 'हम साथ रहेंगे पापा' ऐसे ही संस्कारों की कथा है। इस कहानी के केंद्रीय चरित्र पापा, अपनी पत्नी के चले जाने पर अपनी दोनों लड़कियों को भारत में हॉस्टल में रखकर दादा-दादी के संस्कारों में पालते हैं। बेटियाँ अमेरिका छुट्टियाँ मनाने जाती हैं और वहीं रह जाती है। प्रिया का विवाह एक भारतीय लड़के पंकज से हो जाता है। नेहा जिद कर घर से अलग सहेलियों के साथ रहने लगती है। पापा मन में दुखी होते हैं फिर भी कुछ बोल नहीं पाते। पछताते हैं कि बेटियों को अमेरिका नहीं लाना चाहिए था। पापा की भारतीय कला से जुड़ी चीजों की दुकान है, जिसमें प्रिया उनका हाथ बँटाती है। पापा उसे वेतन सा एक पैकेज दे देते हैं। थके पापा उस माहौल से अकेलेपन से दूर जाना चाहते हैं पर अंत में प्रिया अपने पति के साथ उनके घर में रहने का प्रस्ताव रखती है। पापा का क्रोध व तनाव पिघल जाता है और संतुष्टि का भाव चेहरे पर छाने लगता है। इस तरह कमलेश जी अमेरिका में रहकर भी भारतीय संस्कारों में रचे बसे चरित्रों का वर्णन करती है।

अमेरिकी कानून बच्चों की सुरक्षा की दृष्टि से अधिक कठोर है। स्कूल के नियमों के अनुसार यदि कोई माता-पिता बच्चों को लेने समय पर स्कूल नहीं पहुंचते या कोई सूचना नहीं देते तो बच्चों को अनाथ आश्रम पहुँचा दिया जाता है। अदालत की अनुमति के बाद ही बच्चे माता-पिता को मिल पाते हैं। 'तुम उपेक्षित नहीं' कहानी की लावरेन पति से तलाक के बाद बेटी की जिम्मेदारी अकेले उठाती है। नए शहर में नई नौकरी की जद्दोजहद के बीच वह बेटी को लेने स्कूल समय पर नहीं पहुँच पाती लेकिन फिर भी वह बेटी को उपेक्षित सा अनुभव नहीं होने देना चाहती है। वकील के माध्यम से वह बेटी को पुन: प्राप्त करती है।

अमेरिकी समाज में स्त्री पुरुष संबंधों के बीच आजादी के नाम पर स्वच्छंदता और खुलापन

दिखाई देता है। आपसी आकर्षण दैहिक अधिक होता है। इसीलिए तलाक भी उतनी ही आसानी से हो जाता है। लेकिन इसमें पीड़ित स्त्री ही अधिक होती है। कभी उसे शराब का सहारा लेना पड़ता है तो कभी 'होम फोर अनमैरिड मदर' या 'शेल्टर फॉर होमलेस वुमन' का। पुरुष वर्ग अपनी जिम्मेदारी को आसानी से झटक कर अलग हो जाता है। 'बेघर' की एन 'जिंदगी का एल्बम' की 'केटी' या 'क्षितिज' कहानी की यपैग ऐसे ही चरित्र है। इसमें सबसे अधिक प्रभावित बच्चे होते हैं। पति-पत्नी के तलाक के बाद यदि माता-पिता ने अपना अलग संसार बसा लिया तो बच्चे न तो माँ के नए परिवार में सहज रह पाते हैं और न ही पिता के नए परिवार में। इस दृष्टि से इनकी 'वापसी' कहानी बेहद मार्मिक बन पड़ी है।

यअदृश्य कल्पित तीसरा कहानी की 'लूसी' के मन में यह प्रबल लालसा होती है कि उनका अपना बच्चा हो लेकिन सारे प्रयत्न कर वह असफल हो जाती है। पति एंथोनी अपने मन को समझा लेता है लेकिन लूसी इसके लिए दुखी रहती है। अंत में लूसी अपने दुख को दबाकर एंथोनी के लिए जीना कबूल कर लेती है व मन की उदासी को झटक देती है। वह पुरानी यादों के सहारे नए जीवन को जीने का मंत्र पा लेती है। कमलेश जी बताती हैं कि स्त्री कहीं की भी हो, हमेशा बच्चा न होने का दोष खुद पर लगा लेती है। दुखी रहती है और उसी में जीवन को घुला देती है। इससे बेहतर है वह नई जिंदगी शुरू करे।

'यही जीवन है' कहानी के बूढ़े माता-पिता के लिए बच्चों के पास समय नहीं है। उन्हें केवल जन्मदिन की बधाई मिलती है पर क्रिसमस पर भी घर कोई नहीं आता। बूढ़े माँ-बाप, पोता-पोती का मुँह देखने के लिए तरस जाते हैं। बूढ़ा पति जॉन क्रिसमस मनाने बाहर जाने का प्रोग्राम बनाता है जिससे पत्नी का मन बहल जाए। वहाँ से लौटकर वे नया साल घर में मनाने का निश्चय करते हैं। वे बच्चों के बिना जीना सीख लेते हैं। इसीलिए उनका फोन आने पर बात भी नहीं करते। इसी तरह कालापानी कहानी की 'मां' भारत से अपने बेटे के पास अमेरिका जाकर उसके घर की चौबीसों घंटे की नौकरानी बनकर रह जाती है। बच्चों को संभालना, खाना बनाना, दिनभर लगी रहती, फिर भी कोई उससे बात तक नहीं करता। सब अपने काम में लगे रहते हैं बहू नौकरी छोड़ना नहीं चाहती। भारत में रहने वाले बेटा-बेटी भी कभी याद नहीं करते। अमेरिका प्रवास उसके लिए काला पानी बन जाता है। माँ के प्रति संतान की यह धारणा भारतीय परिवेश से पूरी तरह भिन्न है। अमेरिका जैसे देश में भारतीय बच्चे भी स्वार्थी हो जाते हैं। पैसा जरूर कमाते हैं लेकिन संवेदनशीलता खो देते हैं। वहाँ 'माँ' जैसी स्त्रियाँ केवल काला पानी की सजा भुगतती हैं।

यवापसी की सैंडी के माँ बाप ने तलाक के बाद दूसरी शादी कर ली थी। दोनों के फिर अपने बच्चे थे। सैंडी माँ के पास रहते हुए सौतेले बाप जैकसन और सौतेले भाई से घृणा करती है। माँ के प्रति भी उसके मन में गुस्सा भरा रहता है। अत: वह अपने स्कूल से ट्रॉंसफर करवा कर पापा के पास जाने का निर्णय लेती है। वहाँ पर गोरी सौतेली माँ और भाई बहन सभी सैंडी से कटे हुए रहते हैं। गोरी माँ उससे बर्तन मँजवाती, सफाई करवाती, कपड़े धुलवाती है फिर भी गुस्सा करती है। अंतत: वह

अपनी माँ के पास वापस जाने का निर्णय ले लेती है। माँ-बाप के अलगाव से सैंडी जैसे बच्चों का जीवन तनावपूर्ण बन जाता है।

इस तरह इस कहानी संग्रह में कमलेश बख्शी ने स्त्रियों की पीड़ा और वेदना को व्यक्त किया है। उम्र छोटी हो या बड़ी, स्त्री शादी, तलाक, पुरुष का अहम् , बच्चे, नौकरी आदि जिम्मेदारियों के साथ अपमान, घृणा, नफरत भी झेलती है। देश-विदेश कोई नहीं होता। संवेदना और वेदना सब जगह समान मिलती है। इनकी हर कहानी का पात्र जिंदगी से लड़ते हुए खुशी पाने की कोशिश में दिखाई देता है। जीवन का अंत सुखद बनाने में संघर्ष और रुदन हिस्सा बन जाता है। पैसों के पीछे भागने वाले अपनी संवेदनशीलता खो देते हैं। और खुशी भी गँवा बैठते हैं।

हिंदी विभाग
गोगटे -जोगलेकर कॉलेज,
रत्नागिरी, महाराष्ट्र

# कमलेश बख्शी कृत 'नील गगन तले' यात्रा वृतांत का समीक्षात्मक अध्ययन

**डॉ. सत्यवती चौबे**

सौंदर्य बोध से उत्प्रेरित उल्लसित मानव मन जहाँ-जहाँ जाता है, धरती के जिस अंचल के साथ रागात्मक संबंध स्थापित करता है, वहाँ की स्मृतियाँ उसके मन: पटल पर अपना अमिट प्रभाव लेती हैं। रचनाकार अपनी लेखनी के माध्यम से जब अपनी नैसर्गिक अनुभूतियों-स्मृतियों का साक्षात्कार पाठकों से करवाता है तो उसकी यह रचना यात्रा-वृत्तांत की कोटि में सम्मिलित हो जाती है। खट्टी मीठी स्मृतियों पर आधारित इस विधा का स्वरूप अत्यंत विशद व्यापक है, जिसमें धरती के छोटे से से लेकर संपूर्ण विश्व का दिग्दर्शन होता है।

हिंदी साहित्याकाश की लब्ध प्रतिष्ठित लेखिका कमलेश बख्शी का यह यात्रा वृतांत 'नील गगन तले' इस तथ्य की पुष्टि करता है। वर्ष २००४ में आधुनिक प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित इस यात्रा वृतांत के फ्लैप पर लेखिका अपनी इस पुस्तक के में लिखती है- ''यात्रा वृतांत निश्चित रूप से साहित्य की एक सशक्त विधा है। अतीत में इस विधा के माध्यम से इतिहास लिखे गए हैं जिसके उदाहरण के रूप में मेगस्थनीज, फाह्यान, ह्वेनसांग से लेकर कर्नल टॉड तक हमारे सामने हैं।

इसके माध्यम से प्रकृति, मानव और मानवेतर प्राणी की बहुआयामी गतिविधियों, रंग रूपों और भावों का तथ्यात्मक ललित चित्रण किया जा सकता है। हिंदी साहित्य में यात्रा-वृतांत लेखन के प्रयास बहुत कम हुए हैं।

'चरैवेति-चरैवेति' को सार्थक करती प्रस्तुत पुस्तक यात्रा वृतांत के बहाने मानव सभ्यता के अनेकों अनसुलझे प्रश्नों से जूझने को प्रेरित ही नहीं वरन उनके सन्नद्ध करती है। यात्रा की मानिंद भाषाशैली की सादगी और रवानगी पाठक के समक्ष सभी स्थलों और घटनाओं को रू-ब-रू दृश्यांकित कर देती है।''[१]

कुल सात अध्यायों में विभक्त 'नील गगन तले' यात्रा वृतांत में कमलेश बख्शी ने स्पष्टत: दर्शाया है कि चाहे वह देश हो या फिर परदेस, हो या फिर अमेरिका, नीले आसमान के नीचे इस पृथ्वी के टुकड़ों के नाम, सभ्यता, संस्कृति, जाति, धर्म, रूप, रंग वेश-भूषा, रहन-सहन, खान-पान, कद-काठी, नयन-नक्श भले ही भिन्न-भिन्न हों, परंतु मानवीय अनुभूतियाँ एक समान हैं।

इटारसी-होशंगाबाद-नर्मदा और पंजाब की मिट्टी से सरोकार रखनेवाली कमलेश बख्शी के

मन में मुंबई मुंबई) से बाहर कहीं घूमने की इच्छा जगी, परिवार सहित दक्षिण भारत घूमने के लिए वे निकल पड़ीं। अपनी इस पूरी यात्रा को इन्होंने बहुत विस्तार से 'नील गगन तले' यात्रा वृतांत के प्रथम अध्याय 'दर्शनीय दक्षिण भारत १९५९' (उन्नीस सौ उनसठ) में लिपिबद्ध किया है, जिसमें पूना, मैसूर, औरंगाबाद, अहमदनगर, हैदराबाद, सिकंदराबाद, मद्रास, गोलकुंडा, नांदेड, दौलताबाद और नासिक के अनेक ऐतिहासिक, प्राकृतिक और धार्मिक छोटे बड़े पर्यटन स्थलों का अत्यंत विश्लेषणात्मक चित्रांकन हुआ है। सन १९५९ की अपनी दक्षिण भारत की यात्रा में लेखिका ने अनुभव किया कि भारत के इस क्षेत्र का भ्रमण करने के लिए का ज्ञान होना परम आवश्यक है, बल्कि अनिवार्य है क्योंकि यहाँ के लोगों के हृदय में हिंदी भाषा के प्रति लेश मात्र भी प्रेम लगाव सम्मान नहीं है। हिंदी के प्रति घृणात्मक भाव से भरे टैक्सी वाले वहाँ जानेवाले पर्यटकों से यथोचित व्यवहार नहीं करते हैं। यहाँ गरीबी से लोग पर्यटकों की मजबूरी का खूब फायदा उठाते हैं।

अपने दूसरे यात्रा वृतांत 'बंबई चले कार से १९६३ अप्रैलङ्ख के अंर्तगत लेखिका कमलेश बख्शी ने अपनी दस साल पुरानी गाड़ी आस्टिन से पति बच्चों और एक नौकर के साथ की गई एक रोमांचक यात्रा का बहुत यथार्थ चित्रण किया। लेखिका की यह यात्रा मुंबई से आरंभ हुई और ग्वालियर फतहपुर सीकरी, आगरा, दिल्ली, खन्ना (पंजाब का एक शहर), अमृतसर, जलियांवाला बाग, जोगिन्दरनगर, ज्वालामुखी-मंडी-ओट-बिजौरा-भुंतर-कुल्लू मनाली-चंडीगढ़-भाखरा डैम-आनंदपुर साहब नासिक होते हुए मुंबई आकर संपन्न हुई। ऐतिहासिक-धार्मिक और प्राकृतिक दृष्टि से संपन्न महीनों की इस यात्रा में लेखिका ने ग्वालियर से की बीहड़ता में डाकुओं के आतंक को, बैलगाड़ी से अपनी आस्टिन गाड़ी खींचने के प्रसंग को, सास-ससुर के साथ-साथ विभाजन के पश्चात भारत में आए शरणार्थियों के जीवन संघर्ष को, सिक्ख धर्म में श्री गुरु रामदासजी, गुरु अर्जुन देवजी, गुरु हरगोविंदजी, गुरु ग्रंथसाहब और अमृतसर के स्वर्णमंदिर के धार्मिक व महिमा को, जलियांवाला बाग के नृशंस आक्रमण व हत्या का मर्मांतक चित्रण किया है। इसके साथ ही कुल्लू-मनाली के प्राकृतिक सौंदर्य, जीवन संघर्ष, परदेशी पर्यटकों द्वारा वहाँ की भोली-भाली पहाड़ी लड़कियों के साथ होने वाले छल-नाइंसाफी को तथा अंत में नासिक से बंबई लौटते समय भयावह कार दुर्घटना का अत्यंत विस्तृत रूप में किया है।

तीसरे यात्रा वृतांत 'बस्तर' में लेखिका ने जगदलपुर बस्तर के शहर के किनारे स्थित गाँवों से लेकर बहुत अंदरूनी गाँवों में बसे आदिवासियों की अनेक जनजातियों मसलन घारवा, मूरिया, माडिया, दोरला, परजा और गोंड आदि के जीवन का रेखाचित्र अत्यंत संजीदगी से उकेरा इसके साथ ही यहाँ स्थित उत्तुंग पर्वत श्रेणियों, गुफाओं, जलप्रपात, गगनचुंबी वृक्ष, दंतेश्वरी देवी का मंदिर, दंतेवाड़ा मंदिर, देवगुड़ी समेत आसपास के सभी छोटे-बड़े स्थानों के प्राकृतिक सौंदर्य का बखूबी चित्रण किया है। आदिवासियों के जीवन-यथार्थ से जुड़ी विकट समस्याओं जैसे कि गरीबी-अशिक्षा-अर्थाभाव, चिकित्सक-चिकित्सालय का अभाव, पर्व-त्योहार से संबंधित भक्ति, अंधविश्वास, गाँव की धूल भरी पगडंडियाँ, कच्चे घर आंगन-गलियाँ, तरह-तरह की

वस्तुओं का निर्माण करते कारीगरों की कारीगरी-कलाकारी, शिल्पकला-हस्तकला की नक्काशी, आदिवासियों के स्वभाव अविवेक तुनकमिजाजी परंतु स्वाभिमानी प्रवृत्ति से लेकर शहरी लोगों द्वारा उनके, साथ छल-धोखा करने की प्रवृत्ति का भी लेखिका ने यथावत चित्रांकन किया है। आधुनिक समय के साथ-साथ भोले-भाले आदिवासी कलाकार-शिल्पकार भी होशियारी या चालाकी सीख रहे हैं। लेखिका ने इस क्षेत्र की यायावरी के दरम्यान इस तथ्य की भी गहरी पड़ताल की है कि आदिवासी जनजातियों में भी स्त्रियों का जीवन हाशिए पर है। शोषण-अन्याय अत्याचार की शिकार अनेक स्त्रियाँ निराश्रित महिला-आश्रम में शिक्षा-समझौता-विवाह और नौकरी के माध्यम से पुनर्वास के लिए सचेष्ट हैं, जिसके लिए वे कुटीर उद्योग, सिलाई, कढ़ाई, खिलौने बनाने या नौकरी करने हेतु पढ़ाई करती हैं। इस कार्य में संस्था इनकी पूरी-पूरी मदद करती है।

'नील गगन तले' यात्रावृतांत में लेखिका कमलेश बख्शी ने 'बस्तर' के उपरांत अमेरिका की यात्रा का विश्लेषण दो अध्यायों में क्रमश: 'स्मृतियों में अटके कुछ चेहरे' और 'विदेश से साक्षात्कार (१९९३ जून)' में अत्यंत सूक्ष्मता से किया है। इन दोनों अध्यायों में लेखिका ने दिसंबर १९८३ और जून १९९३ लगभग दस वर्ष पहले और बाद की अमेरिकी यात्रा के अनुभव बाँटते हुए न्यूयार्क, अटलांटा, न्यू आर्लियन्स, लाफयेट, लूसियाना स्टेट, टोरंटो, अटलांटिक सिटी, कसीनो सिटी, रीनो शहर, सेनफ्रांसिस्को, फ्रीमोन्ट, सेन्डियेगो, केलीफोर्निया, सिनसिनाटी, लेक्जिगटन, कनाडा ओटावा, आन्टोरियो और नियाग्रा फॉल आदि के आसपास स्थित लगभग सभी पर्यटन स्थलों का सुंदर विवेचन किया है। लेखिका के लिए निपट अकेले अमेरिका के गंतव्य स्थल तक लंबी यात्रा कर पहुँचना, वह भी सन ८०-९० के दशक में जब मोबाइल का साधन नहीं था, ऊपर से विपरीत मौसम, भयंकर बर्फीले आँधी तूफान तेज हवा, बर्फबारी और हाड़ कंपकपाती ठंड के बीच वाकई बहुत चुनौती भरा और साहसिक कदम था। हालाँकि हर जगह उन्हें अपने लोगों-चिर-परिचित लोगों साथ मिला, जिसके साथ इन्होंने यूरोप-अमेरिका महाद्वीप का भ्रमण किया, वहाँ की सभ्यता-संस्कृति-रीति-रिवाज-परंपरागत पर्व त्योहार, खानपान-रहन-सहन जीवनशैली के साथ-साथ वहाँ बसे एशियाई मूल के भारतीय, पाकिस्तानी, बांग्लादेशी, श्रीलंकाई और मारिशसवासी आदि के जीवनशैली को, उनकी अनुभूतियों, संवेदनाओं की गहरी पड़ताल की है। लेखिका का यह यात्रा वृतांत इस तथ्य ओर भी इंगित करता है कि चाहे वह पौर्वात्य देश हो या फिर पाश्चात्य देश, स्त्रियों की स्थिति कमोबेश एक जैसी ही है। वर्चस्व पुरुष प्रधान समाज का ही है। सन १९६० में अमेरिकन स्त्रियों द्वारा स्वतंत्र होने की घोषणा के बावजूद उन्हें बराबरी का हक नहीं मिला है। की सामाजिक व्यवस्था में उन्मुक्त-स्वच्छंद दैहिक संबंधों का दुष्प्रभाव वहाँ की लड़कियों स्त्रियों के जीवन में स्पष्ट है, उदाहरण स्वरूप समय रहते गर्भपात न करवा पाने की स्थिति में नाबालिग कुंवारी माँ और उसके एक दो बच्चे का गुजारा सरकारी खर्च पर होना, लड़के या उसके माँ-बाप का इसमें कोई साथ न देना, बिल्कुल इकतरफा होकर गर्भधारण करने वाली को ही जिम्मेदार ठहराना आदि। औरतों का जीवन, संसार को नसीहत देने वाले इस देश में भी हाशिए पर ही रखा है। इसके अलावा यहाँ के जीवन की आपाधापी, व्यस्त दिनचर्या, बच्चों की परवरिश,

एकाकीपन, अकेलापन, बुजुर्गों की पीड़ा के लिए आकुलता-व्याकुलता, अपने देश की सोंधी मिट्टी की खुशबू की यादें, इंडिया की तत्कालीन राजनीतिक-आर्थिक-सामाजिक-पारिवारिक-भाषिक स्थितियों पर चर्चा, अपने देश की सभ्यता संस्कृति को परदेश में बनाए बचाए रखने की तत्परता, बच्चों में अपने देश के जीवन मूल्य नैतिक मूल्य डालने की कोशिश, पर्यावरण, प्रदूषण आदि जैसे मुद्दों को प्रसंगानुसार दर्शाया गया है। कमलेश बख्शीकृत ङ्गनील गगन तलेङ्ख में एशिया यूरोप के साथ-साथ अमेरिका महाद्वीप की यात्रा का चित्रण अत्यंत विस्तार से हुआ है।

'मिंऊढार घाटी (१९८९)' यात्रा वृतांत में लेखिका ने बहुधार्मिक देश भारत के विभिन्न धर्मस्थलों मसलन ऋषिकेश-बद्रीनाथ-पांडुकेश्वर-हेमकुंद-हरिद्वार-केदारनाथ-कनखल-सतीकुंड-हर की पौड़ी-ब्रह्मकुंड-जोशीमठ-फूलों की घाटी-मिंऊढार घाटी आदि प्रदेश के अत्यंत दुर्गम स्थानों पर स्थित तीर्थस्थानों का पूरा विस्तृत चित्रण किया है। भारत के कोने-कोने से आनेवाले यात्री अपनी धार्मिक आस्था-विश्वास में सराबोर होकर कलकल करती नदियों में स्नान करते हैं, गर्म-कुंड-ठंड-कुंड में विस्मित भाव से स्नान कर पुण्य कमाते हैं, दर्शन लाभ पाते हैं तो उसके ही प्रकृति की अद्भुत छटा निहार कर भाव विभोर हो यहीं बस जाने की अभिलाषा करने लगते हैं। हमारे ये धर्म स्थल राष्ट्रीय एकता के प्रतीक हैं, जब हिंदू-सिक्ख-बौद्ध-जैन धर्म को माननेवाले यात्री अपने अपने धार्मिक स्थलों की ओर एक साथ आगे बढ़ते हैं, तो वहीं अन्य धर्म मसलन, या फिर अन्य कोई भी धर्म का अनुशरण करनेवाले लोग उनके सहयात्री बन कभी घोड़ेवाले खच्चरवाले दुकानवाले बोझा ढोनेवाले के रूप में उनकी सहायता करते हैं। लेखिका इस यात्रा वृतांत में उन सभी श्रेष्ठ आदर्श महापुरुषों के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हैं, जिन्होंने बिना राह के अपनी जिंदगी पर लगाकर इन धार्मिक स्थलों की खोज की, वहाँ पहुँचने हेतु मार्ग-पुल चौड़ी पगडंडी-धर्मशाला-गुरूद्वारा कमरे आदि बनवाये, यात्रियों के लिए चौबीसों घंटे चाय पानी लंगर व अन्य सुविधा के लिए कंबल गद्दे आदि का इंतजाम करवाया, साथ ही समय के साथ-साथ तीर्थ-यात्रियों की बढ़ती संख्या के अनुसार साल दर अपनी व्यवस्था को बढ़ाया। पहाड़ों का दुर्गम आरोहण-अवरोहण करते हुए अपने-अपने गंतव्य तक पहुँचना जितना कठिन है, उससे कई गुना चुनौतीपूर्ण कार्य है सबकी व्यवस्था करना, यह तथ्य इस यात्रा वृतांत में द्रष्टव्य है।

इस संग्रह का अंतिम यात्रा वृतांत है 'कोडय केनाल, मई १९९४'। अगस्त, १९९३ में जब फिरोजपुर से लौट रही थीं, तो रास्ते में उन्हें तेज ज्वर की परेशानी हुई। हफ्तों इलाज के बाद जब बुखार नहीं उतरा तो फिर विधिवत रक्त जाँच, सीटी स्केनिंग, एक्सरे एंटीबायोटिक दवाई चलती रही। चार बार अस्पताल में भर्ती होने के बावजूद शहर के मशहूर डॉक्टर उठवाड़िया को बीमारी में नहीं आ रही थी। अंतिम प्रयास के रूप में उन्होंने ओपन लंग ऑपरेशन हेतु रुग्ण फेफड़े से छोटा टुकड़ा काटकर जाँच करने हेतु भेजा। दो दिन बाद रिपोर्ट आते ही उन्होंने बताया कि कमलेश बख्शी को संसार का रेअर बी. ओ. ओ. पी. निमोनिया है। बीमारी पकड़ी गई, शुरू हो गया, धीरे-धीरे स्वास्थ्य सुधरने लगा। डॉक्टर के परामर्श के अनुसार कोडय केनाल जैसी ठंडी जगह का चयन लंबे समय के लिए किया गया। शीतल मंद समीरधुनी रूई सा कोहरा, नीलगिरी पर्वत के ऊंचे ऊंचे

गगनचुंबी वृक्षों की अठखेलियों और झील की गहराई में खाई थकी, बीमार, कमजोर आँखों को, शरीर को और सुकून मिलने लगा। चार कदम चल पाने में असमर्थ शरीर में कोडय केनाल की प्राकृतिक छटा, उन्मुक्त स्वच्छ जलवायु ने शक्ति संचारित किया। धीरे-धीरे वे एक घंटा नौका विहार ब्रेयन्ट पार्क में लगे मेले की रम्यता वहाँ के क्षेत्रीय लोगों समेत पर्यटकों से देर बातें करने में समक्ष होने लगीं। बातूनी सायमन से उनकी विभिन्न मुद्दों पर लंबी बातचीत चलती।

स्वास्थ्य लाभ लेते हुए कुछ दिनों के उपरांत वहाँ से लौट आने पर भी कोडय केनाल की स्मृतियों को वे कभी नहीं विस्मृत कर पाईं। 'नील गगन तले' यात्रा वृतांत का समग्र अध्ज्ञन करने उपरांत निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि यात्रा वृतांत की सीमाएँ अनंत हैं। यात्रा के दौरान गंतव्य स्थल छोटा बड़ा क्षेत्र विशेष-देश परदेश कोई भी स्थान हो सकता है, वहाँ यात्रा करने का माध्यम, कारण अलग-अलग हो सकता है, वहाँ की चुनौतियाँ-कठिनाइयाँ भिन्न-भिन्न हो सकती हैं परंतु यात्रा छोटी हो या बड़ी, उसका उद्देश्य उसकी सार्थकता, उसकी अनुभूतियाँ अत्यंत विशद-व्यापक हैं, उतनी ही विशद व्यापक, जितनी कि नील गगन तले की सरज़मीन है।

- हिंदी विभागाध्यक्ष,
विल्सन कॉलेज, मुंबई

# विदेशों में भारतीय संस्कृति की वाहिका यादों में बसा विदेश

**डॉ. पुष्पा रानी**

यात्रा का इतिहास काफी पुराना है। हमारे वाङमयों के अनुसार देवगण ऋषिमुनि वायुमार्ग, जलमार्ग, थलमार्ग से अक्सर यात्राएँ किया करते थे। यजुर्वेद में एक मंत्र में कहा गया हैं। अय वेनश्चोद्यात् पृथिवीगर्भा ज्योर्तिजुरायु: रजसो विमाने। इममपासंगमे शिशुं न विप्रमं मतिभिरिहतिं। उपयाम गृहीतोस्मि कर्यटवा। (७/२६) जिसमें उपर्युक्त तथ्य की सम्पुष्टि है। वेद में विमान प्रकरण मिलता है, जिसमें वायुयान की चर्चा है। रामायण में पुष्पक विमान की चर्चा है तो महाभारत में शाल्व को शिव द्वारा प्रदत्त सौम विमान का उल्लेख है। इस तरह लोगों द्वारा यात्राएँ करना अनादिकाल से प्रचलित है। आधुनिक युग में अनेक साहित्यकारों के यात्रा वृत्तांत मिलते है जो प्राकृतिक स्थलों की यात्रा कर नैसर्गिक सान्निध्यता प्राप्त करते रहते हैं जिसमें राहुल सांकृत्यायन की वोल्गा से गंगा (अथातो जिज्ञासा) प्रख्यात है। वैसे यात्रा का एक दार्शनिक पक्ष भी है। मनुष्य नित्य यात्रा करता रहता है। जीवन भी तो एक यात्रा है जिसे मनुष्य इस जगत में पूरा करता है।

कमलेश बख्शी ने भी 'यादों में बसा विदेश' नामक पुस्तक में अनेक स्थानों की यात्राओं का उल्लेख किया है। यात्राकारा कमलेश बख्शी ने अपनी यात्राओं में भारतीय संस्कृति को देखने का प्रयास किया है। वैसे संस्कृति को एक निश्चित परिभाषा में बाँधना विद्वानों के लिए कठिन नहीं तो कोई सुगम कार्य भी नहीं रहा। डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन के अनुसार-'संस्कृति विवेकबुद्धि का, जीवन को भली प्रकार जान लेने का नाम है।' (डॉ. उमाकांत, मैथिलीशरण गुप्त : कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता, पृ. ३६६) आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भारतीय दृष्टिकोण को अपनाते हुए संस्कृति को इन शब्दों में परिभाषित किया है-'संस्कृति शब्द मनुष्य की विविध साधनाओं की सर्वोत्तम परिणति है।' (अशोक के फूल, पृ. ३६५) रामधारी सिंह दिनकर के अनुसार-'असल में संस्कृति जिंदगी का एक तरीका है और यह तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहा है जिसमें हम जन्म लेते है।' (रामधारी सिंह दिनकर : संस्कृति के चार अध्याय) इसे सामाजिक रूप प्रदान करते हैं।

संस्कृति मानव मात्र की वस्तु है, वह अंतर्राष्ट्रीय है, लेकिन अपने विशेष दृष्टिकोण सभ्यता धर्म, आदर्श और आचार विचारों के कारण एक देश तथा जाति की संस्कृति दूसरे देश की संस्कृति से भिन्न हो जाती है। जहाँ तक भारतीय संस्कृति का प्रश्न है तो यह कि भारतीय संस्कृति अनेक जातियों और देशों की संस्कृति का मिश्रण होते हुए भी पूर्ण भारतीयता को धारण किए हुए है। भारतीय संस्कृति आर्यों की ही संस्कृति नहीं वरन इसमें अनार्यों का भी महत्वपूर्ण योगदान है।

संस्कृति और राष्ट्र दोनों ही व्यक्ति आधारित हैं। व्यक्ति इन दोनों की इकाई है। इसी व्यक्ति के विस्तार से परिवार समाज और फिर राष्ट्र का निर्माण होता है। राष्ट्र इन सबमें सर्वोपरि है क्योंकि राष्ट्र इन सबके संगठन का परिणाम है और राष्ट्र के द्वारा ही इसकी स्थिति भी सुदृढ़ होती है। राष्ट्र के संबंध में अनेक मत हैं पर सभी यह स्वीकार करते हैं कि भूमि राष्ट्र का कलेवर है, जन उसका प्राण है और संस्कृति उसका मानस हैं। डॉ. सत्यव्रत: भारतीय राष्ट्रभाषा सीमाएँ तथा समस्याएँ।

कमलेश बख्शी ने अपनी यात्राओं में लिखा है अमेरिका कनाडा में भारतीय मूल के लोग भारतीय संस्कृति को पूरी तरह सुरक्षित रखे हुए हैं। इन देशों में सनातन धर्म सभा, अर्थ समाज तथा भारतीय सांस्कृति संबंध परिषद के प्रयत्नों से भारतीय संस्कृति रीतिरिवाज, धार्मिक अनुष्ठानों आदि का प्रचुर मात्रा में विस्तार हुआ है। भारत से हजारों किलोमीटर दूर प्रशांत महासागर के दक्षिण पूर्व में स्थित, अनेक द्वीपों से मिलकर बना एक सुंदर देश फीजी है। इस देश में बसे आप्रवासी भारतीयों ने अपने धर्म, अपनी संस्कृति और अपनी सभ्यता को बनाए रखने के लिए अनेक कष्ट उठाए। अपनी गहन आस्था और अपने अटल विश्वास के सहारे जीवन की हर कठिनाई का डटकर सामना किया। आज स्वतंत्र फीजी में उन्हीं की संतानें देश के सभ्य व सुसंस्कृत नागरिक हैं।

यद्यपि टर्की, न्यूयार्क, कनाड़ा, दक्षिण अफ्रीका में काफी मात्रा में ऐसे भारतवासी हैं जो विविध धर्मों तथा समुदायों के होते हुए भी भारतीय संस्कृति को संजोए रखने में पूर्णतया प्रतिबद्ध हैं। टर्की, न्यूयार्क, कनाड़ा में ऐसे बहुत से भारत प्रेमी अंग्रेज भी हैं जो भारतीय संस्कृति के प्रसार के लिए समर्पित हैं। इन्होंने भारतीय संस्कृति के आधारभूत मूल तत्वों को पहचाना है और इसके महत्त्व को भी स्वीकार किया है। कभी समय था जब अंग्रेजों का भारत में आना और यहाँ अपना शासन स्थापित करना, भारतीयों के लिए अभिशाप था, परंतु वह अभिशाप अब वरदान सिद्ध हुआ है। हम भारतीयों के लिए साहित्यिक सांस्कृतिक अभिवृद्धि के हितार्थ हो गया।

यथार्थ यह है कि उस समय यह कार्य एक साम्राज्यवादी परंपरा के अतर्गत था, परंतु आज जो अंग्रेज विद्वान भारतीय संस्कृति के अध्न अध्यापन में लगे हैं वे नि:स्वार्थ भाव से स्वांत: सुखाय रूप में गिने जाते हैं। आज अमेरिका, कनाड़ा, इंग्लैंड में अनेक विद्वान हैं जो भारतीय संस्कृति एवं भाषा पर समान अधिकार रखते हैं। ऐसा वर्णन कमलेश बख्शी ने दक्षिण अफ्रीका की यात्रा के संदर्भ में किया है।(यादों में बसा विदेश, पृ. ५९)

कहते हैं कि चिंतन की प्रक्रिया काल निरपेक्ष होती है। हिंदी के सुप्रसिद्ध सहज कवि कबीर और रूपर्ट एक बिंदु पर एकमत व सहमत हैं और वह है भाषा बहता नीर। बहता नीर अत्यंत निर्मल होता है, जो जीवन व वनस्पति के लिए किसी वरदान से कम नहीं होता। यही भाषा रूपी बहता नीर अंतत: जब समाज रूपी तालाब में जाकर स्थित हो जाता है तब उसमें प्रेम, त्याग सद्भावना व सौंदर्य के शतदल कमल खिलते हैं, जो संसार की समस्त मानव जाति को अपनी ओर आकर्षित कर उसके मन में संतुष्टि का भाव पैदा करते हैं। यही भारतीय संस्कृति का वास्तविक रूप है, जिसे उद्घाटित करने में हमारी भाषा एवं संस्कृति पूर्णतया सक्षम रही है। विदेशी विद्वानों के संरक्षण में हमारी

संस्कृति अपनी अक्षुण्ण परंपरा को बनाए रखने और निरंतर गति प्रदान करने में पूरी तरह समर्थ है। भारतीय संस्कृति को जानने के लिए जिन विदेशी विद्वानों को आकर्षित किया है, उनमें प्रमुख हैं, भारतीय हिंदी लेखकों के सौंदर्य, शास्त्रीय विचारों के विकास की खोज, जीवन के लक्ष्यों व मानव उद्देश्यों के संबंध में उनकी धारणाओं में हुए क्रमिक परिवर्तन, साहित्य के वास्तविक चरित्रों के स्वरूप और प्रकृति के साथ मानवतावादी दृष्टिकोण में आए परिवर्तन। (प्रो. ई. पी. चेलीशेव, स्मारिका, द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलन, २८-३० अगस्त १९७६, पृ. १५३) (कमलेश बख्शी, यादों में बसा विदेश, यूनियन सिटी, पृ. ४७ टुर्की, पृ. १२-१३-१४)

यह सही है कि विदेशों में अधिसंख्यक रूप में भारतीय निवास करते हैं और स्वतंत्र होने के पश्चात राजनीति का मुख्य केंद्र भी ये भारतवंशी ही हैं, परंतु विदेश भी विभिन्न संस्कृतियों का देश हैं जिसमें अफ्रीका यूरोप व एशिया आदि देशों के निवासी रहते हैं। सभी की अपनी-अपनी पृथक सांस्कृतिक परंपराएं हैं, एक संस्कृति दूसरी संस्कृति को प्रभावित करती रहती है। विदेशों में आप्रवासी मूल भारतीयों की संस्कृति भारतीय संस्कृति है। विदेशों में विविध मत मतांतरों, भाषाओं एवं धर्मों के होते हुए भी भारतीय संस्कृति की धारा अविच्छिन्न रूप से शाश्वत प्रवाहित हो रही है। विदेशों में हिंदू, इस्लाम व ईसाई, सभी धर्मों के लोग रहते हैं और इस धार्मिक विविधता के होते हुए भी इन अप्रवासी भारतीयों में भारतीय संस्कृति अन्त:सलिला की भाँति प्रवाहित हो रही है।

दक्षिण अमेरिका को शीर्षस्थ सुरीनाम, गुयाना तथा ट्रिनीडाड देशों में भी भारतीय मूल के लोग, भारतीय संस्कृति को पूरी तरह सुरक्षित रखे हुए हैं। इन देशों में सनातन धर्म, सभ्य आर्य समाज तथा भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद के प्रयत्नों से भारतीय रीतिरिवाज आज भी प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। कमलेश बख्शी के यादों में बसा विदेश लेखिका ने अपनी यात्राओं में भारतीय संस्कृति को चित्रित करने का प्रयास किया हैं। (यादों में बसा विदेश, पृ. ७०-७१)

वास्तव में विदेशों में यदि भारतीय संस्कृति जीवित है तो वहाँ के आपसी सौहार्द व भाईचारे से जिनमें उन्हें किसी धर्म विशेष की नहीं, वरन परमपिता परमेश्वर के आह्वान के स्वरों की अनुगूंज सुनाई देती है। यही कारण है कि इन देशों में भारतीय भाषाएँ जीवित है, क्योंकि इन्होंने अपने सभी व्यक्तिगत तथा धार्मिक स्वार्थों को त्यागकर प्राणपण से भारतीय भाषा और भारतीय संस्कृति की रक्षा करने का प्रण लिया है।

हमें यह तो मानना ही पड़ेगा कि भारत में ऐसी आंतरिक एकता विद्यमान है जिसमें जाति-धर्म, भाषा, आचार-विचार, रहन-सहन के भेद होते हुए भी समस्त भारतीयों को समान संस्कृति के सूत्र में आबद्ध कर रखा है। जिस देश की सांस्कृतिक एकता जितनी दृढ़ होगी वह देश उतना ही सुदृढ़ होगा। भारतीय संस्कृति की एक विशेषता यह भी है कि वह कभी भी साम्राज्यवादी नहीं रही। वह सदैव मानवतावादी रही है। यही कारण है कि वह आज समस्त विश्व के लिए अनुकरणीय हो रही है। यद्यपि आज भी अन्य देशों की संस्कृतियों की भाँति नवीनता की ओर अग्रसर हो रही है, परंतु

इसका अर्थ यह भी नहीं कि वह अपने अतीत को छोड़ती जा रही है। यह समय की माँग है और समय के अनुसार मनुष्य स्वयं ही पुरातन और नवीनता के बीच सामंजस्य स्थापित कर लेता है, यही उसके लिए और समाज के लिए और राष्ट्र के लिए श्रेयस्कर भी है।

आज समस्त भू मण्डल पर भारतीय संस्कृति अरुणोदय की सतरंगी लालिमा से तप्त होकर भी शरद पूर्णिमा की रजत चंद्रिका के समान शीतलता प्रदान कर रही है। एक समय था, जब ब्रिटिश साम्राज्य की राजनीति का सूर्य संपूर्ण विश्व में दिनरात चमकता था, आज वह समय है, जब उस सूर्य के अस्तांचल को चले जाने पर उसका स्थान भारतीय संस्कृति लेती चली जा रही है। इस बात का स्पष्ट संकेत कविवर सुमित्रान्दन पंत ने अपनी कविता स्वप्न और सत्य के द्वारा कर दिया था-

'आज भी सुंदरता के स्वप्न, हृदय में भरते मधु गुंजार,
वर्ग कवियों ने जिनको गूँथ, रचा भू स्वर्ग, स्वर्ण संसार।
आज भी आदर्शों के सौंध, मुग्ध करते जन मन अनजान
देश देशों के कालिदास, गा चुके जिसका गौरव गान।
मुहम्मद ईसा, मूसा, बुद्ध, केंद्र संस्कृतियों के श्रीराम,
हृदय में श्रद्धा, संभ्रम, भक्ति जगाते विकसित व्यक्ति ललाम।
धर्म दर्शन, नीति चरित्र, सूक्ष्म चिर का गाते इतिहास,
व्यवस्थाएँ, संस्थाएँ तंत्र, बाँधते मन बन स्वर्णिम पाश।'

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि विश्व पटल पर चमकते उन सितारों को कालिदास, कबीर, तुलसी को सश्रद्धा से नमन करते हैं, जो विदेशी होते हुए भी विदेशों में रहते हुए भी, विदेशों की यात्रा के शौकीन भारतीय संस्कृति की गौरव गाथा का गायन हिंदी के माध्यम से कर रहे हैं, उसकी अभिवृद्धि के लिए कटिबद्ध हैं। विदेशों में हिंदी के यशदीप के आलोक का अभिनंदन व अभिवादन हो रहा है। इस प्रकार भारतीय संस्कृति हमारे विशाल राष्ट्र की प्राणशक्ति और धरोहर है। उसका विराट चिंतन आकाश की तरह व्यापक पवन की तरह उन्मुक्त, सागर की तरह गहरा और धरती की तरह सर्वमंगलकारी है। हमारी राष्ट्रीयता क्षुद्रता और संकीर्णता की सीमा को लांघकर, आत्मवत सर्वभूतेषु सर्वेभवन्तु सुखिन: और 'वसुधैव कुटुंबकम' की संदेशवादी का और सभी दिशाओं में गूंजनेवाली भद्र विचारों की संवाहिका है।

प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
हिंदी विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय,
कुरुक्षेत्र

# संघर्ष और युगीन चुनौतियाँ- देश-समाज और संस्कृति

**प्रा. संजय प्रल्हाद महाजन**

साहित्य और मनुष्य का जीवन अभिन्न है। साहित्य में मनुष्य का जीवन प्रतिबिम्बित होता है। मनुष्य परिवर्तित जीवनक्रम का लेखा-जोखा साहित्य में दिखाई देता है। अर्थात साहित्य जीवन से प्रेरणा प्राप्त करता है और जीवन को प्राणवान बनाता है। जीवन के अभाव में साहित्य की कल्पना नहीं की जा सकती जीवन का स्वरूप द्वंद्वात्मक होता है। उसके विकास के मूल में राग-द्वेष, सुख-दु:ख, लाभ-हानि के दिखाई देते है। इन द्वंद्वों के घात-प्रतिघात से, संघर्ष से, भावनाओं की निर्मिति होती। यही अभिव्यक्ति साहित्य का विषय बन जाती है। जीवन के संघर्षमय, संतापमय क्षणों को साहित्य संतोष से भर देने की क्षमता रखता है और सुखमय क्षणों को स्फूर्ति प्रदान करता है।

हिंदी कथा साहित्य विकास में महिला कथाकारों का योगदान महत्वपूर्ण रहा है। जिसमें अनेक लेखिकाओं ने अपने कथा साहित्य के माध्यम से प्रबुद्ध पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है। इनमें सत्तर के दशक से सृजन में सक्रिय कमलेश बख्शी का महिला लेखिकाओं में संवेदनशील महिला कथाकार के रूप में उल्लेखनीय स्थान रहा है। एक सौ पच्चीस कहानियाँ, सात उपन्यास दो यात्रा-वृतांत आदि का लेखन किया हैं। उन्होंने कथा साहित्य के माध्यम से अपनी निजी अनुभूतियों को कलात्मक ढंग से अभिव्यक्त किया है। देश का हृदय बिंदु मध्यप्रदेश के प्राकृतिक सौन्दर्य की छटा में पली बढ़ी श्रीमती बख्शी का जीवन काली मिट्टी जुड़ा हुआ है। बचपन में घटित घटनाओं की स्मृतियाँ को उन्होंने अपने कथा साहित्य के माध्यम से वाणी देने का भरसक प्रयत्न किया है।

'देश, समाज और साहित्य' कमलेश बख्शी की सृजनशील प्रवृत्ति, अनुभव और अनुभूति तथा संकलन प्रियता से किए विचार, लेख, स्तंभ आदि का संकलन है। जिसमें लेखिका ने लेखन प्रक्रिया के आरंभ से समय-समय पर विभिन्न पत्र, पत्रिकाओं में स्तंभ लेख के रुप प्रकाशित सामग्री को संग्रहीत किया है। तत्कालीन समय में उनके विचार, आचरण व अन्याय से लढ़ने की ताकद देते हैं।

'देश, समाज और साहित्य' नामक पुस्तक के माध्यम से कमलेश बख्शी जी ने स्वतंत्रता संग्राम से जुड़ी महिलाओं जिन्होंने अपना सारा जीवन भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को समर्पित किया। ऐसी महिलाओं के जीवन से जुड़ी स्थितियों को जो समाज के लिए प्रेरणादायी हों। जिन्हें तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं जैसे-नवभारत टाईम्स, धर्मयुग, विविध भारती, जबान, कॉलेजों में होनेवाले सेमिनारों के विषय अंश, महाराष्ट्र मानस, शिबिर, भारतीय महिला बोध, महानगर, लोकमत समाचार, साहित्य संवाद, विश्व हिंदी सम्मेलन, लोकमत दिवाली अंक आदि स्तंभ लेखों को

संग्रहित किया गया है। एक तरह से यह पुस्तक लेखिका की पैनी दृष्टि का परिचय तो कराती ही है। साथ ही उन जन प्रतिनिधियों के जीवन से रू-ब-रू भी करवाती हैं तथा मंद बुध्दि बच्चों की समस्या, कानून और शासन तथा समाज में पुलिस की भूमिका, सूर का वात्सल्य चित्रण, हिंदी और सृजन, साहित्य, लेखन में पंजाबी महिला लेखिकाओं का योगदान, विदेश में हिंदी का महत्व, महाराष्ट्र की दर्शनीयता आदि विभिन्न पहलुओं पर रोशनी डालने का कार्य इस पुस्तक के माध्यम से हुआ है।

समय बलवान होता है, समय के साथ सब कुछ बदल जाता है। लेखिका बख्शी ने इस पुस्तक की भूमिका में लिखा है 'वक्त कितनी जल्द बीत जाता है' लगता है, 'कल की बात है' दशक बीत गए विवाहोपरांत जब-मैं मुंबई महानगर में आई - एक अबोध कस्बे की लड़की-उसे यहाँ की हर चल-अचल चीजें चौकाती थी- बसें, ट्राम, लोकल, टॅक्सी, इमारतें, चारों ओर लहराता सागर, किनारे से टकराती लहरें, मछुआरों की बस्ती, सूखते जाल, नावें, बड़े-बड़े सिनेमा हॉल। हमारे यहाँ था एक टीन-टप्पर-स्क्रीन दोनों ओर दर्शक-एक तरफ स्त्रियाँ, एक तरफ पुरुष-बरसात में छत से पानी टपकता। यहाँ बढ़िया कुर्सियाँ-स्क्रीन के सामने स्त्री-पुरुष सभी।' अर्थात आधुनिकता ने आज के जीवन पर संपूर्ण रीति से अपना कब्जा कर लिया है। आधुनिकता के इस दौर में पुरानी चीजें, पुरानी, संस्कृति, प्राचीन आचार-विचार, आदर्श सभी छूटते जा रहे हैं। जो आनेवाली पिढ़ी को अंधकार के कुँए में ढकेलने जैसा होगा। इसलिए देश- समाज और संस्कृति का परिचय देना आज के नवयुवकों के लिए तथा पाठकों के लिए उतना ही आवश्यक है, जितना प्यासे को पानी की आवश्यकता होती है।

'आधुनिक पंजाबी में नारी का स्वरूप प्रतिमा' में बताया गया है- पंजाबी काव्य परंपरा की दो धाराएँ है (१) सिक्ख गुरुओं की प्रेरणा से बढ़ी। (२) मुसलमान फकीरों ने आगे बढ़ाया। १५वीं शती में गुरुनानक पंजाबी काव्य से जुड़े। उन्होंने स्त्री पर होने वाले अत्याचारों की निंदा की, सूफी संतों भी रूढ़ियों, पाखंडों के खिलाफ चुनौती का आंदोलन चला दिया। भाई वीर सिंग आधुनिक पंजाबी भाषा की गद्य शैली के संस्थापक थे। पंजाबी काव्य में भारत विभाजन का प्रभाव दिखाई देता है। पंजाबी साहित्य में नारी के विविध रुप पत्नी, प्रेमिका, विधवा, परित्यक्ता, बहू-बेटी सभी के यथार्थ और मार्मिक चित्र मिल जाते हैं। पंजाबी के प्रसिद्ध कवियों में-शिवकुमार टालची, पाश, अमृता प्रीतम, कवयित्री प्रभजोत, अत्यंत मार्मिक चित्रण करने मे सिध्दहस्त माने जाते हैं। अमृता प्रीतम का अधिकांश काव्य संयोग वियोग प्रेम पर आधारित है। वह है ''किसी को यह अधिकार नहीं है कि वह नारी को सदैव निरावरण करता रहे। नारी में चेतना की ढेर सारी पर्ते अपने पूरे अस्तित्व में निहित रहती हैं। इतिहास के प्रति उसकी जागरूकता प्राचीन काल से अभी तक कायम है। असहाय पीड़ा को भोगकर वह जो कुछ भी करती है उसे पूर्णत्व भी प्रदान करती है। इतिहास इस बात का गवाह है कि पुरुष सदैव से नारी का शोषक और विनाश करने वाला रहा है।''[८]

'शहीद भगतसिंह' के कहने पर अंग्रेजों की जुल्मी सत्ता से लोहा लेने के लिए अनेक देश प्रेमी

युवकों ने हिस्सा लिया युवकों को इस तरह जोड़ने के लिए शहीद भगतसिंह का नाम स्वर्ण अक्षरों में लिखा रहेगा। अपने साथियों के साथ मिलकर इन्होंने अंग्रेजों की बेड़ियों में जकड़ी भारत माता को आजाद किया और स्वयं फाँसी पर चढ़ गए लेकिन भारत माता को आजाद किया। 'नौवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन' दक्षिण अफ्रीका के जोहान्सबर्ग मे होनेवाले नौवे विश्व हिंदी सम्मेलन में भाग लेने का इन्हें मिला था। देश विदेश से आए विद्वानों को सुनने का अवसर मिला था। सम्मेलन के बाद वहाँ की गरीबी से भी साक्षात्कार हुआ था। 'महात्मा गांधी की भाषा दृष्टि और वर्तमान का संदर्भ' - गांधीजी ने हिंदी को राष्ट्रीय आंदोलन के लिए सही समझा था। १९१६ में नागरी प्रचारिणी काशी में भाषण देते हुए उन्होंने कहा था -''मैं समझता हूँ हमारे राष्ट्रीय आंदोलन के लिए पूरे देश में एक आम भाषा की जरूरत है। एक आम भाषा होना राष्ट्रीयता का महत्वपूर्ण तत्त्व है। वह आम भाषा ही होती है जिसके द्वारा इस देश को एक साथ लाया जा सकता है तो सबके लिए एक आम भाषा से बढ़कर दूसरी कोई ताकद नहीं हो सकती और यह सभा का उद्देश्य है।''[९] गांधीजी का हिंदी के प्रति प्रेम और दृष्टि आज की परिवर्तित हिंदी पर सही बैठती है। फिल्में, टी.वी. पर प्रसारित इसी भाषा में लोगों तक पहुँच रही है। उनकी भाषा दृष्टि आज संदर्भ में भी शत-प्रतिशत ठीक है।

'महिला लेखन के आयाम' -पुरुष सत्तात्मक समाज में स्त्री कठपुतली की तरह, खूंटे से बंधी बेजुबान गाय से अधिक नहीं थी। स्त्री चिंतन कर सकती है, लिख सकती हैं, पुरुष इसे स्वीकार नहीं कर पा रहा था। लेकिन वक्त बदला स्वतंत्रता के पश्चात मध्यम वर्ग स्त्रियों की शिक्षा बढ़ी। और उसके हाथ में लेखनी आई। महिला लेखक को लेकर आज भी कहा जाता है कि-''लेखिकाएँ कोरी भावुकता, नारी के दुखों का संसार और उससे उपजी सहानुभूति के सागर में डूबती उतराती रहती है।''[१०] लेकिन महिला लेखिकाओं में ममता कालिया, मृदुला गर्ग, राजीसेठ, मृणाल आदि लेखिकाओं ने अपने कथा-साहित्य के माध्यम से साहित्य जगत को जो दिया है वह सदियों तक भुलाया नहीं जा सकता। पंजाब - पंजाबी-गुरु गुरुनानक, पंजाब शब्द फारसी का है -पंज और आब मतलब पांच नदियों के बीच बसा प्रदेश और वहाँ बोली जानेवाली भाषा पंजाबी पंजाब के सर्वश्रेष्ठ धर्म गुरुनानक की महिमा इस संसार में कौन है जो जानता नहीं है। सिख्खों के वे आदि गुरु थे। इसमे लेखिका ने अपने गुरु का गुणगान किया है। श्री गुरु ग्रंथ साहिबजी मध्यकालीन संतों की अमृत वाणी का अभूतपूर्व संकलन है। आध्यात्मिक मार्ग को वैज्ञानिक ढंग पेश किया गया अद्वितीय ग्रंथ माना जाता है। इस ग्रंथ की महिमा हिन्दुस्तान में ही विश्व के आध्यात्मिक इतिहास में एक अनुठे ग्रंथ के रूप में है।

निष्कर्षत: लेखिका कमलेश बख्शी कृत 'देश, समाज और साहित्य' यह कृति एक अनमोल कृति है। जिसमें लेखिका ने स्वतंत्रता संग्राम से जुड़े महान स्त्री - पुरुषों का जिक्र कर स्वतंत्रता सेनानियों के जीवन से रू ब रू ही नहीं किया बल्कि उनके असीम त्याग का भी परिचय दिया है। साथ ही साहित्य समाज का दर्पण होता है। उस उक्ति की सार्थकता को भी पुष्टि किया है। आदिवासी जन-जीवन, उनकी वेशभूषा, रहन-सहन से वाकिफ कराते हुए उनके जीवन से जुड़े सारे कठिन प्रसंगों का भी परिचय करवाया है। हिंदी के प्रचार प्रसार से जुड़ी बातें विभिन्न सम्मेलनों, आंदोलनों

का भी परिचय कराती हैं। इस कृति में देश-विदेश में हिंदी के बढ़ते महत्व अभिव्यक्ति दी गई है।

**संदर्भ :**

१) देश समाज और साहित्य  कमलेश बख्शी पृ.क्र.५, २) वही - पृ.क्र.१०, ३) वही - पृ.क्र.१६, ४) वही - पृ.क्र.१७, ५) वही - पृ.क्र.२१, ६) वही - पृ.क्र.२४, ७) वही - पृ.क्र.२९, ८) वही - पृ.क्र.३१, ३२, ९) वही - पृ.क्र.३३, १०) वही - पृ.क्र.३५

हिंदी विभागाध्यक्ष
कै. न्हानाभाऊ म. तु. पाटिल कला महाविद्यालय
जलगाँव, महाराष्ट्र

# संवेदनशील, सौम्य एवं सरलता की मूर्ति : कथा लेखिका कमलेश बख्शी से बातचीत

**डॉ. मंजुला देसाई**

वरिष्ठ कथा लेखिका कमलेश बख्शी अपनी उम्र के आठ दशक पार कर चुकी हैं। वे साहित्य में पूर्णत: लीन हैं। उपन्यास एवं कहानी लेखन के लिए प्रख्यात लेखिका संप्रति जीवन-संस्मरण पर लेखनी चला रही हैं। उनका जीवन एक मिसाल है। मातृभाषा पंजाबी होते हुए भी उन्होंने अपना समग्र लेखन हिंदी में ही किया। लघु-कथा के प्रति भी उनका रुझान बढ़ा है। उनकी लगभग ५० लघु प्रकाशन हेतु तैयार हैं। आकाशवाणी पर लगभग पाँच दशकों तक उन्होंने साहित्यिक, सामयिक विषयों पर वाताएँ, चर्चा-सत्र, नारी-जगत आदि में प्रमुख योगदान दिया है। इनके अनेक कार्यक्रम दूरदर्शन से भी समय-समय पर प्रसारित हुए हैं। अपने आस-पास के प्रति बेहद संवेदनशील होने के नाते वे सामाजिक कार्यों से भी हैं। उन्होंने लेखन की दुनिया में जीवन की शुरुआत मुंबई के नवभारत टाइम्स के कॉलम राइटर से की। उनसे बातचीत करना सुखद अनुभव रहा। उनसे बातचीत के कुछ अंश इस प्रकार हैं-

**डॉ मंजुला देसाई : कमलेश जी, आपका हिंदी लेखन की तरफ रुझान कब व कैसे हुआ?**

बख्शी : मेरे पिता (बाजी) पी.डब्लू.डी. मैं नौकरी करते थे। छोटे-छोटे कस्बों में ट्राँसफर होती थी जहाँ स्कूल न होते। हम भाई-बहनों के बड़े होने पर वे इटारसी आ गए। वहाँ स्कूल थे पूरा वातावरण हिंदीमय था। यह स्वाभाविक ही था कि मुझ में हिंदी पूर्णत: आत्मसात हो गई। व किशोरावस्था में जब कलम चली तो हिंदी में ही कलम चली।

**डॉ मंजुला देसाई : आपको लेखन की प्रेरणा किससे व कब मिली ?**

कमलेश बख्शी : जब मैं दस वर्ष की थी तब से लेखन कविता से शुरू हुआ। हमारे घर में एक कुत्ता था जिसे हम से यबिजूङ्ख बुलाते थे। उसे मरते हुए देखकर मुझे मर्मान्तक पीड़ा हुई। मैं बहुत बेचैन रही। बहुत दुखी हुई तब मैंने पहली बार कविता लिखी। फिर तो में कविताएँ लिखती गई।

**डॉ मंजुला देसाई : आप नवभारत टाइम्स से कब व कैसे जुड़ीं?**

कमलेश बख्शी : १९५७ में मुंबई आना हुआ। मेरे पति बख्शी जी ने रहने के लिए किराए का घर वी.टी. स्टेशन के पास लिया। वहाँ नवभारत टाइम्स का दफ्तर पास ही था। हमारे घर पर नवभारत

टाइम्स आता था। एक दिन उस में पढ़ा नारी नौकरी करें या नहीं? इस पर पाठकों के आमंत्रित किए गए थे। मैंने छोटा सा लेख लिखकर भेजा। लेख रविवार के अंक में छपा। नवभारत टाइम्स के तत्कालीन संपादक श्री हरिशंकर द्विवेदी ने फोन करके सराहना की। दफ्तर में बुलाया और 'जीवन-परिमल' कॉलम में लिखने का आग्रह किया। लेख के साथ-साथ कहानियाँ लिखने लगी। 'धर्मयुग' के संपादक सत्यकाम विद्यालंकार जी ने भी प्रेरणा दी। उन लोगों की प्रेरणा की बदौलत धर्म युग में मेरे लेख व कहानियाँ छपने लगीं। बाद में सारिका व अन्य पत्र-पत्रिकाओं में भी छपीं।

**डॉ मंजुला देसाई : क्या आप पंजाबी में भी लिखती हैं?**

कमलेश बख्शी : मेरी मातृभाषा पंजाबी परंतु अधिकांश लेखन हिंदी में ही है। डॉ. महीप सिंह ने प्रेरित किया कि मैं पंजाबी में भी लिखूँ। उन्होंने पंजाब से निकलने वाली हिंदी पत्रिकाओं में मेरी कहानियाँ पढ़ी थी। मैंने कोशिश की और एक संग्रह लायक कहानियाँ पंजाबी में लिखीं। महीप सिंह जी पुस्तक का लोकार्पण करना थे। पुस्तक छापने के पूर्व ही उनका देहांत हो गया। बाद में पुस्तक छपी थी-'बे गड्डी चढ़ गई'।

**डॉ मंजुला देसाई : किन रचनाकारों ने आपको प्रभावित किया?**

कमलेश बख्शी : किसी एक रचनाकार की ही रचना अच्छी लगी हो, ऐसा नहीं है। हर रचनाकार की न कोई कहानी या कविता आदि मन को छू जाती है। 'मुंबई हिंदी विद्यापीठ' का दफ्तर वी.टी. स्टेशन के पास था। मेरे घर से पास ही था। वहाँ से ढेरों पुस्तकें लाकर पढ़ती थीं। विवाह हो गया, बच्चे हो गए, गृहस्थी संभालती थी परंतु मेरा पुस्तकें पढ़ना जारी रहा। मैं लगभग सभी प्रसिद्ध रचनाकारों को पढ़ गई।

**डॉ मंजुला देसाई : क्या साहित्य को खाँचों में बाँधकर लिखना चाहिए?**

कमलेश बख्शी : मैं इससे सहमत नहीं हूँ।

**डॉ मंजुला देसाई : हिंदी कथा साहित्य को लगभग १०० साल हो गए हैं। आपके अनुसार सबसे सशक्त लेखन किस का है?**

कमलेश बख्शी : सशक्त रचनाएँ आती रहती हैं। वक्त के साथ रचनाएँ बाँधी नहीं जा सकतीं। हर दशक का अपना-अपना योगदान है।

**डॉ मंजुला देसाई : क्या साहित्य लेखन से समाज प्रभावित होता है?**

कमलेश बख्शी : समाज की हर समस्या लेखन में आती है। तो समाज का ही एक अंग है। जब वह रचना पढ़ता है - वह प्रभावित होता है, जब समस्याएँ लेखक द्वारा उठाई जाती हैं तब जो भी व्यक्ति उसे पढ़ता है। वह समाज को परिवर्तित करने की कोशिश करता है। प्रकारांतर से कहें तो परिवर्तन होता है।

**डॉ मंजुला : क्या आज का लेखक समाज को लेकर गंभीर है?**

कमलेश बख्शी : लेखक तो हमेशा से समाज को लेकर गंभीर रहा है। आस-पास जो घटनाएँ घटती हैं, वे उसे झिंझोड़ती हैं, लेखक उसे सही दृष्टि देकर लिखता है। देश, समाज, राजनीति, भ्रष्टाचार सभी पर कलम चलाता है। तेजी से बदल रहा है। कई रचनाकार अपने क्षेत्र का बारीकी से अध्ङ्गन कर उसे अभिव्यक्त करते हैं। नई पीढ़ी भारतीय समाज की वास्तविकता को चित्रित कर रही है।

**डॉ मंजुला देसाई : आपके अनुसार समकालीन लेखन में महिला लेखन कहाँ खड़ा है?**

कमलेश बख्शी : पिछले दो-तीन से महिला-लेखन ने अपनी लेखन शक्ति को विस्तार व गहराई दी है। नए विषयों और नए क्षेत्रों में प्रवेश किया है। समकालीन लेखन विशेषत: कथा लेखन जीवन के यथार्थ, मानवीय संबंधों, तत्कालीन राजनीति, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और भूमंडलीकरण के बाद की चुनौतियों को व्यक्त कर रहा है। भूमंडलीकरण से समस्याओं को व्यक्त कर रहा है। वैश्विक धरातल पर आए बदलावों को महिला लेखन ने बड़ी शिद्दत से व्यक्त किया है। शुरुआत में महिला लेखन स्त्री पर, स्त्री विषयक अनुभव पर आधारित था। वह आज व्यापक मानवीय चेतना को लेकर लिखा जा रहा है। समकालीन लेखन को एक वृहद में ले जाने का कार्य महिला लेखन ने किया है। लेखिकाओं की नई पीढ़ी पूरे आत्मविश्वास के साथ लिख रही है। उसके भीतर समाज से संकोच जैसी बेड़ियाँ नहीं हैं। घर परिवार, शोषण, बलात्कार पर भी खुलकर लिखा है।

**डॉ मंजुला देसाई : स्त्री-विमर्श पर आपकी विशेष टिप्पणी?**

बख्शी : स्त्री विमर्श पर लगातार चर्चा चल रही है। मेरी दृष्टि से स्त्री विमर्श में उन सवालों, समस्याओं तथा बिंदुओं को भी उठाना चाहिए जो उसके अस्तित्व, अस्मिता तथा व्यक्तित्व विकास से जुड़ी हैं। केवल शारीरिक मानसिक गुलामी से मुक्ति की बात करना स्त्री विमर्श नहीं है। गरीब, स्त्री की स्थिति साहित्य में आई है। दलित व आदिवासी लेखन में भी स्त्री को जोड़कर लिखा जा रहा है। स्त्री आज प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष के साथ कदम से कदम मिलाकर नए कीर्तिमान स्थापित कर रही है।

**डॉ. मंजुला देसाई : क्या आप साहित्य के आंदोलनों से जुड़ी ? क्या आपने स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श से जुड़कर लिखा है?**

कमलेश बख्शी : मैं कभी किसी आंदोलन से जुड़कर नहीं लिखती। यह बात अलग है कि समय-समय पर आए हुए दलित या आदिवासी विमर्श आदि पर मेरी कुछ रचनाएँ लिखी गई हैं। मैं जिस इलाके थी, वहाँ आस-पास आदिवासी मिले। बस्तर में भी मिले। दलित तो आस-पास थे ही। सो वे पात्रों में उतर आए। आज साहित्य के क्षेत्र में ये विचारधाराएँ चल रही है। किसी एक के साथ

जुड़कर नहीं बल्कि मेरा लेखन सभी विमर्शों से जोड़कर लिखा गया है।

**डॉ मंजुला देसाई : लेखकों को मिलने वाले पुरस्कारों के बारे में आपकी क्या राय है?**

कमलेश बख्शी : पुरस्कारों को लेकर पहले जैसा नहीं रहा। सरकारी और गैर सरकारी चयन समितियाँ पारदर्शी नहीं रहीं। बहुत कुछ सुनते रहते हैं। चयन पारदर्शी होना चाहिए, सही व्यक्ति को पुरस्कार देना चाहिए।

**डॉ मंजुला : आजकल पुस्तकों के पाठक कम होते जा रहे हैं। क्या यह सच है?**

कमलेश बख्शी : यह बात कुछ हद तक सही है। पुस्तकों की बढ़ती कीमत इसका कारण हो सकती हैं। अब तो मोबाइल, टैबलेट पर पूरी पुस्तक आ जाती है। लेटे-लेटे या यात्रा करते समय पढ़ा जा रहा है। लेकिन एक बात गौर करने लायक है की हिंदी में पत्र व पत्रिकाएँ पहले से कहीं अधिक प्रकाशित हो रही हैं। इनके पाठकों की संख्या भी बढ़ी हैं। आज मीडिया पहले से अधिक सशक्त रूप में उभरकर सामने आया है। ई-पत्रिका का चलन भी है।

**मंजुला देसाई : आपने साहित्य लेखन में प्रचुर योगदान दिया। इसके अलावा आप कई संस्थाओं से भी जुड़ी रही हैं। इस पर कुछ प्रकाश डालिए।**

कमलेश बख्शी : हिंदी के प्रति रुझान के कारण मैं हिंदुस्तानी प्रचार सभा, मुंबई हिंदी विद्यापीठ, मुंबई प्रांतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, लेखिका संघ दिल्ली आजीवन सदस्य हूँ। युसूफ मेहर अली सेंटर की भी सदस्या हूँ। इसके अलावा मेयर रिलीफ फंड कमेटी की एग्जीक्यूटिव कमेटी में (५८-८९) तक, भारत सेवक समाज में कार्यकर्ता सदस्य-डॉ उषा मेहता (स्वतंत्रता सेनानी) के साथ १९५८ से २००० तक। एस.एन.डी.टी. की बोर्ड ऑफ स्टडीज में १९९१ से तक। टी.वी. सेंटर पूर्वावलोकन चयन समिति फिल्म एवं सीरियल की सदस्य (२००० से २००६) हिंदुस्तानी प्रचार सभा की एग्जीक्यूटिव कमेटी में २००९ से।

**डॉ. मंजुला देसाई : आप समाज सेवा से भी जुड़ी रहीं? इस पर विस्तारपूर्वक बताइए।**

कमलेश बख्शी : युवा वर्ग भारत सेवक समाज से जुड़े मैंने नवभारत टाइम्स में पढा। मैंने उनसे संपर्क किया। श्री साले भाई अब्दुल कादर मुख्य थे। युवा वर्ग की अध्यक्षा डॉ उषा मेहता थीं। मैं उनसे जुड़ गई। गरीब स्त्रियों के लिए सिलाई क्लास चलानी थी। उन्हें सिलाई सिखा आत्मनिर्भर बनाया जाता। मुझे उस कलास की पूरी जिम्मेदारी दी वर्षों तक यह क्लास चली। सिलाई सीखने पर उन्हें सिलाई मशीन भी दी जाती थी। नुक्कड़ नाटक भी किए। डॉ ऊषाबेन मेहता रिटायरमेंट के बाद मणि भवन से जुड़ीं। मुझे इस कार्य में साथ-साथ रखा। सन् २००० में उनकी मृत्यु तक में साथ थी। मेरा सौभाग्य था कि मेयर फंड में पूर्व मेयर साले भाई अब्दुल कादर ने मुझे कमेटी में रखा। कमेटी

में गणमान्य लोग थे-श्री खोराकीवाला, श्री एसपी गोदरेज, डॉ. उषा मेहता। यह प्राकृतिक आपदा कमेटी थी।

**डॉ मंजुला देसाई : क्या निजी कारणों से लेखन में कभी विघ्न आए?**

कमलेश बख्शी : मेरे में कभी विघ्न नहीं आए। मेरे पति श्री बख्शी जी का पूरा सहयोग था। जब कभी मेरी कोई रचना या किताब छपती वे हैंगिंग गार्डन जाकर अपने मित्रों को दिखाते। स्वयं उर्दू, इंग्लिश, गुरुमुखी जानते थे। हिंदी उन्हें नहीं आती थी। परंतु टी.वी या रेडियो पर मेरा कोई कार्यक्रम तो बड़े मनोयोग से सुनते थे। बाकी बच्चों के साथ मुझे पढ़ने लिखने के लिए समय निर्धारित करना पड़ता। प्राय: दोपहर के समय मैं लिखने पढ़ने का काम कर लेती। परिवार की तरफ से मुझे हमेशा प्रोत्साहन ही मिलता रहा।

**डॉ मंजुला देसाई : इधर लघु कथाओं की ओर रुझान बढ़ा है? उसके बारे में बताइए।**

कमलेश बख्शी : मैं लघु कथाएँ पढ़ती थी, परंतु मैं स्वयं भी लघु कथाएँ लिखूँगी ऐसा विचार नहीं था। लघुकथा की शुरूआत नरीमन प्वाइंट के फुटपाथ पर हुई। जहाँ मैं बेंच पर बैठी थी। वहाँ एक लड़का जिस कपड़े से गाड़ियाँ रहा था, उसी को निचोड़ कर पास में पाँव सिकोड़कर सोई नन्हीं बच्ची के ऊपर उसने डाल दिया। तब मैंने 'फुटपाथ का अकबर' लघुकथा लिखी अब तो काफी लघु कथाएँ लिखी गई हैं। शीघ्र ही पुस्तक छापने की योजना है।

**डॉ मंजुला देसाई : क्या संस्मरण और जीवनी लिखने कोई योजना है?**

कमलेश बख्शी : बहुत सारे संस्मरण टुकड़े टुकड़े में लिखे पढ़े हैं। उन्हें एकत्र कर रही हूँ। संस्मरण का एक भाग 'बचपन-कस्बा यादों का' लिखा जा चुका है। अब 'महानगर की यात्रा विवाहोपरांत' भी लिखा गया है। यह तो सच है कि हम अकेले नहीं जीते। संस्मरण में पड़ोसी मित्र, परिवार से जुड़े लोग भी आ गए हैं।

**डॉ मंजुला देसाई : आप अपनी नवीनतम कृति पर प्रकाश डालें?**

कमलेश बख्शी : मेरा नवीनतम कहानी संग्रह 'मेरा हेनरी' है। अमेरिका की यात्रा करते समय इस पात्र हेनरी, उसकी मां व दादी से हुई। और कहानी बन गई। यह शायद मेरा अंतिम कहानी संग्रह है।

**डॉ मंजुला देसाई : आप लेखिका हैं कोई भी कहानी संग्रह अंतिम कैसे हो सकता है?**

कमलेश बख्शी : मेरे पति श्री बख्शी जी के अचानक इस संसार से चले जाने पर मुझे उनकी दुनिया संभालनी पड़ी। कभी बैंक का दरवाजा तक नहीं देखा था अब एक अलग ही दुनिया में प्रवेश हुआ है। इस बीच कुछ छुटपुट कविताएँ लिखी हैं। संग्रह भी तैयार हुआ है। प्रकाशित भी

हुआ। कविता का जन्म एक भाव, एक परिदृश्य या किसी क्षण से प्रेरित होता है। बाल्यावस्था, किशोरावस्था में लिखती रही। वे छपती भी रहीं। मेरे शायद तीन कविता संग्रह आ सकते हैं। मेरे भीतर का बदलाव मुझे प्रेरित कर रहा है।

**डॉ मंजुला देसाई : आप को सबसे ज्यादा संतोष किस बात का है?**

कमलेश बख्शी : मुझे ना किसी का राग है न द्वेष। बचपन लेकर आज तक जीवन निर्विघ्न चल रहा है। मेरे रचना संसार को लेकर कई विद्यार्थी एम. फिल., पी-एच.डी. कर रहे हैं। पंजाब-हरियाणा, इंदौर, उज्जैन, मुंबई से विद्यार्थी रिसर्च कर रहे हैं। उनसे मिलना अच्छा लगता है। मुझे कई सम्मान व पुरस्कार भी मिले हैं। मेरी तीनों बेटियाँ होनहार हैं। में नेशनल और इंटरनेशनल स्तर पर विजयी रहीं। मेरे आठ उपन्यास व दस कहानी छपे हैं। दो यात्रा वृतांत व दो लेखों के संग्रह प्रकाशित हुए हैं। मुझे कई अनुवादक भी मिले। सात उपन्यास व एक कहानी संग्रह मराठी में अनूदित हुआ। अंग्रेजी, सिंधी, कोंकणी, गुजराती व पंजाबी में कहानियों का अनुवाद हुआ। मेरी पुस्तक नया मोड़ जर्मनी में पहुंची। वहाँ इसका अनुवाद हुआ। जर्मनी चेक भाषा में अनुवाद हुए। देश, समाज, साहित्य को महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादमी ने पुरस्कृत किया। मेरी कहानी जर्मनी के कोर्स में जाती है। जीवन की सूर्यास्त-बेला में मेरे लेखन पर समीचीन पत्रिका में देवेश ठाकुर जी विशेषांक निकाल रहे हैं। उनके प्रति मेरा हार्दिक आभार तथा धन्यवाद साथ ही समस्त समीचीन परिवार के सदस्यों को मेरी ओर से धन्यवाद। मुझे सब कुछ सहज मिला।

अब तो शेष-आशेष संस्मरण को पूर्ण करने में लगी हुई हूँ।

८/१०, न्यू छाप्रा बिल्डिंग,
गुरु नानक रोड,
बांद्रा (पश्चिम)
मुंबई -४०००५०.

# अगला अंक

## जनवरी-जून २०२०

**वीरेंद्र डंगवाल की रचनाओं पर केंद्रित**

---

**जुलाई-दिसंबर २०२०**

## *शैलेश मटियानी* की रचनाओं पर केन्द्रित

Reg. No. MAHHIN / 2008 / 26222

*With best compliments from :*

*With best wishes from :*

**CREATIVE EYE LTD.**

CORPORATE OFFICE : 'KAILASH PLAZA' PLOT NO. 12-A, NEW LINK ROAD.
OPP. LAXMI IND. EST. ANDHERI (W), MUMBAI-400 053.
Tel. : 26732612-15 • Fax26315024
E-mail : dk@creativeeye.vsnl.netin • visit our Website : www.creativeeye.com